अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

भूदान-यज्ञ

भूदान यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रांति का सन्देशवाहक

सौर भाद्र ८, शक १८७९ सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार
वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति २ आना

मैं गाँव में घर-घर भीख माँगने गया हुआ था, तब तेरा स्वर्ण-रथ एक सुनहले स्वप्न की भाँति दूर दिखायी दिया और मैं आश्चर्य करने लगा कि यह सम्राटों का महिमामय सम्राट् कौन है ? मुझे उम्मीद बंधी कि मेरे बुरे दिनों का अब अन्त होने वाला है। मैं बिना माँगे दान की प्रतीक्षा में खड़ा रहा—उस ऐश्वर्य के लिए भी, जो धूल में सब तरफ बिखरा पड़ा है ! जहाँ मैं खड़ा था, वहाँ आकर तेरा रथ रुका, तेरी नजर मुझ पर पड़ी और तू मुस्कराते हुए नीचे उतर आया। मैंने अनुभव किया कि मेरे जीवन का सौभाग्य अन्त में लौट आया है। तब एकाएक तूने अपना दायाँ हाथ बाहर निकाल कर मुझसे कहा, "क्या दोगे ?"

ओह ! यह कितना बड़ा परिहास था ! एक भिक्षुक के आगे अपने हाथ फैलाना ! मैं बड़ी उलझन में पड़ गया। तब मैंने अपने झोले में से धीरे-से अन्न का एक छोटा-सा दाना निकाला और तुझे दे दिया। परन्तु मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा, जब सूर्यास्त के समय मैंने जमीन पर अपने झोले को खाली किया, तो एक सोने का दाना उस पर आ गिरा। मैं ज़ार-ज़ार रोने लगा और मैंने सोचा कि काश, मैंने सर्वस्व तुझे सौंपने की हिम्मत की होती ! —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

वर्ष-३, अंक-४८ 卐 राजघाट, काशी 卐 शुक्रवार, ३० अगस्त, '५७

पख़्तून भी भूदान में पीछे नहीं रह सकते !

(खान अब्दुल गफ्फार खाँ)

(२३ जून को नैशनल पार्टी के कार्यकर्ताओं के सामने सरहदी गांधी श्री खान अब्दुल ग़फ्फार खाँ साहब ने जो भाषण दिया, उसके कुछ अंश यहाँ संक्षेप में दिये जा रहे हैं।—सं०)

आज हम यहाँ तीन बातों के लिए एकत्र हुए हैं। पहली बात यह है कि हम सभी मनुष्य हैं, फरिश्ते नहीं हैं। इसलिए हमसे गलतियाँ अवश्य होंगी। पहले भी हमारा यह नियम था, अब भी है कि यदि अपनी संस्था के बाहर का कोई व्यक्ति हम पर ज़ोर-जुल्म करे, तो हम उसे क्षमा कर दें। किन्तु आज मैं देखता हूँ कि अपनी संस्था के भीतर ही, जिन लोगों ने बड़े-बड़े त्याग किये थे, उनके बीच मन-मुटाव तथा भ्रांति पायी जाती है। ऐसी दशा में, जब कि हम अपनी संस्था से बाहर के व्यक्तियों के अनुचित व्यवहार को क्षमा करने का अभ्यास रखते हैं; आपस में एक ही संस्था के भाइयों को क्षमा न करें, यह विचारणीय है। मैं आप सबसे अनुरोध करता हूँ कि आपस के मन-मुटाव तथा मनोमालिन्य को भुला दें और आपसी भ्रांति की उपेक्षा करके मजबूत और मृदुल भ्रातृत्व पैदा करें।

दूसरी बात यह है कि यदि आप दूसरे आज़ाद देशों की ओर दृष्टिपात करें अथवा इतिहास का अध्ययन करें या अपने पड़ोसी देश को ही देखें और फिर अपने देश की ओर आँख उठायें, तो यह बात भली-भाँति सिद्ध हो जायगी कि वहाँ हमारे देश की अपेक्षा पैदा होने वाली कठिनाइयों पर बड़ी हद तक नियंत्रण हो चुका है। हमारे देश में इन्हीं प्रकार की कठिनाइयों को नियंत्रित करना तो दूर की बात है, उनमें अधिकता ही हुई है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारे यहाँ की राजनीति का स्तर काफी घटिया है। भारत की बात इसके विपरीत है। ब्रिटेन को ही लीजिये। वहाँ दो बड़ी राजनीतिक संस्थाएँ, उदार और अनुदार हैं। पहली मजदूरों की, दूसरी अमीरों की। किन्तु वहाँ हमारे देश की तरह राज्य-सत्ता के लिए सब एक संस्था में एकत्र नहीं हो जाते। भारत में भी स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से आज तक एक ऐसी राजनीतिक संस्था है, जो कभी पराजित नहीं हुई। इस संस्था के लोग राष्ट्रवादी हैं और उन्होंने आजादी के लिए बहुत अधिक काम किया है। भारत में राजनीतिक पार्टी के साथ-साथ रचनात्मक संस्थाएँ भी हैं, जिन्होंने राष्ट्र-सेवा के रचनात्मक कामों के लिए अधिकार की कुर्सियों को भी लात मार दी। किन्तु हमारे देश में ऐसे लोग नहीं हैं।

मेरा इशारा विनोबा भावे की संस्था (आंदोलन) से है। इसके स्वयंसेवक छोटी-छोटी टोलियों के रूप में हजारों मील की पदयात्रा के द्वारा लोगों तक अपना संदेश पहुँचाते हैं। विनोबा भावे की संस्था के लोग जिस गाँव में जाते हैं, वहाँ के लोगों को समझाते हैं कि अंग्रेज चले गये, अब आपका राज्य है। आपको चाहिए कि अपना सुधार स्वयं करें, अपने यहाँ भाइयों की तरह रहें, अपने बच्चों की शिक्षा की स्वयं व्यवस्था करें, अपने गाँव को पाक-साफ़ रखें, वगैरह। जब वे देखते हैं कि किसी गाँव के किसी व्यक्ति के पास अपनी जमीन या अपना निजी मकान नहीं है, तो दूसरे लोगों से वह माँग कर उसे दे देते हैं। इस संस्था के लोगों ने लाखों एकड़ भूमि प्राप्त कर ली है और भूमि-हीन किसानों में उसे बाँट रहे हैं। जब वहाँ के लोगों को ये कार्यकर्ता पूर्ण रूप से चेतनाशील बना देते हैं, तो उसके पश्चात् गाँव में पंचायत बना दी जाती है, जो आपस के झगड़ों का निर्णय करती है। इसी प्रकार प्रत्येक गाँव के लोग अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ स्वयं पैदा करते हैं।

मैं जब से जेल से आया हूँ, कई बार अनेक अवसरों पर, यहाँ भी एक ऐसी रचनात्मक संस्था की स्थापना की चर्चा कर चुका हूँ। मैं चाहता हूँ कि सब लोग एकत्र होकर इस बारे में परामर्श करें। मुझे रचनात्मक संस्था का बहुत शौक है, क्योंकि मंत्री-पद और विधान-सभा की सदस्यता से मुझे घृणा है। मेरे एक बूढ़े भाई ने कहा था कि यहाँ तो एक इंच भी भूमि सेवा-भाव से कोई गरीबों को न देगा। मैंने उत्तर दिया था कि :

यद्यपि भारतीय जनता और हमारे स्वभाव में अंतर है, किन्तु ज्योंही
यह अभियान यहाँ आरंभ होगा, पख्तून जाति इसमें बाजी मार ले जायगी।

विनोबा भावे से किसीने प्रश्न किया था कि 'आप अनायास ही लोगों से भूमि आदि का दान क्यों माँगते फिरते हैं ? सरकार एक कानून पास कर दे, तो सब काम सरलता से हो जायगा।' किन्तु विनोबाजी ने उसे उत्तर दिया कि कानून की शक्ति से लोगों में मनमुटाव पैदा हो जायगा।*

*'सर्वोदय विचार पत्रिका,' जलंधर से साभार : अनु० जनाब मंजूरुल हसन; काशी

हिंदी का स्नेहसूत्र

भारत में अंग्रेजी भाषा सब लोगों को जोड़ने वाली कड़ी नहीं बन सकती। हिंदी ही वह प्रेमतंतु है। तंतु कच्चा होता है, इसलिए उसमें जबर्दस्ती नहीं चल सकती ! कैदियों को बांधने वाली मजबूत शृंखला तो लोहे की होती है, परंतु प्रेमतंतु कच्चा ! फिर भी प्रेम के कारण लोग उसे टूटने नहीं देते !

लेकिन हिंदी का अभिमान रखने वाले कुछ लोग उसकी खींचा-तानी करके उसको तोड़ने की कोशिश करते हैं। पंजाब का आंदोलन नाहक चलाया है ! पंजाब पर कोई संकट आ गया है, ऐसा वे मानते हैं ! एक मनुष्य अनेक भाषा जाने, इसमें क्या आपत्ति है ? वह तो आपत्ति नहीं, संपत्ति है ! लेकिन संकुचित बुद्धि ऐसा नहीं सोचती, न वह व्यापक विचार करती है। वहाँ जो सत्याग्रह चल रहा है, उसमें सत्य है या नहीं, पता नहीं, लेकिन आग्रह तो दीखता है ! हम आलोचना नहीं कर रहे हैं। लेकिन यह कहना चाहते हैं कि हिंदी का ऐसा आग्रह नुकसानदेह है। प्रेम से लोग उसका स्वीकार करते हैं, यही उसकी ताकत है ! —विनोबा

www.vinoba.in

आज की प्रमुख समस्या : "मैनेजरवाद!"

(धीरेन्द्र मजूमदार)

मूल बात यह है कि विकेन्द्रीकरण की धारणा में ही गलती हुई है ! वह गलती चरखा-संघ के जमाने से हुई। चरखा-संघ ने विकेन्द्रीकरण की जगह 'टुकड़ीकरण' किया। इसी तरह आजकल अन्य संस्थाएँ भी विकेन्द्रीकरण करना चाहती हैं। जैसा गुरु ने किया, वैसा ही चेला कर रहा है। दुनिया भर में यह गलती हो रही है।

असल में विकेन्द्रीकरण होगा, केन्द्रीयकरण का प्रकार बदल कर। आज क्या होता है कि केन्द्रीकरण का प्रकार बदला नहीं, केवल आकार बदल गया है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि बिसमिल्लाह ही गलत है। आज समय आ गया है, जब हमें इस प्रश्न पर गहराई से सोचना चाहिये। आप खादी का काम करते हैं, लेकिन आपका उत्पादन एक तरफ है और स्वावलंबन दूसरी तरफ।

प्रेरणा-स्वावलंबन

आपके उत्पादन में से स्वावलंबन नहीं निकलेगा। स्वावलंबन के लिए दूसरा पौधा लगाना होगा। आज स्वावलंबन की परिभाषा ही गलत है। केवल वस्त्र पर स्वावलंबन नहीं हो सकता। स्वावलंबन को समझना होगा। पहले होगा प्रेरणा-स्वावलंबन। फिर नेतृत्व-स्वावलंबन, उसके बाद व्यवस्था-स्वावलंबन और फिर बाद में होगा वस्त्रस्वावलंबन। आज हम उल्टा करते हैं, यानी शीर्षासन ही करते हैं!

खादी के व्यापारी-काम से छूट कर स्वावलंबन का काम करें, इसके लिए संस्थाओं को पंचवर्षीय और दसवर्षीय योजना बना कर काम करना चाहिए। मान लीजिए कि इस वर्ष आपको वस्त्रस्वावलंबन के लिए पाँच लाख रुपया खर्च करना है, तो उससे गाँव-गाँव में बुनकर खड़े करने होंगे। नये बुनकर खड़े करने में चौगुनी बुनाई देनी पड़े, तो देंगे। इस प्रकार खादी-बोर्ड की सहायता बन्द हो, तब तक हम उस बुनकर को गाँव में जमा देंगे।

बुनकरों को जमाने के लिए हमने १९३० से प्रयत्न किया। बुनकरों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की। लेकिन बुनाई-प्रशिक्षण के लिए जिनको भेजा, वे सब स्वावलंबन के बजाय परावलंबी हो जाते हैं। इसलिए हमें प्रथम विकेन्द्रीकरण की परिभाषा में और फिर स्वावलंबन की परिभाषा में परिवर्तन करना होगा।

खादी-विचार

लोग कहते हैं कि मिल के मुकाबले खादी कैसे चलेगी? यह बात समझ लेनी चाहिये कि मिल के मुकाबले में खादी चल सकती है। हाँ मिल के कपड़े के मुकाबले में चरखे का 'कपड़ा' नहीं चल सकेगा! गांधीजी ने कई बार कहा है कि खादी एक विचार है, कपड़ा नहीं। इसलिए खादी-काम के बारे में कार्यकर्ताओं के मन में जो उलझनें हैं, वे साफ हो जानी चाहिये। कार्यकर्त्ता को अपनी दृष्टि बदलनी होगी, व्यवस्थापक-वर्ग को श्रमिकवर्ग बनना होगा।

एक जमाना था, जब दुनिया में सामंतवाद की समस्या थी। फिर पूँजीवाद आया और आज पूँजीवाद को काट कर मैनेजरवाद की समस्या हमारे सामने है। सामंतवाद मर चुका है और पूँजीवाद मर रहा है। लेकिन इन दोनों से भी भयंकर शोषणकर्ता है, आज का मैनेजरवाद। समाज के सारे अंगों को यह मैनेजरवाद चाट रहा है।*

* राजस्थान-खादी-संघ, खादीबाग (जयपुर) में ३ अगस्त को दिये गये भाषण से।

नागरी भी प्रेम-तंतु है!

सारे राष्ट्र के लिए जैसे हिंदी भाषा प्रेम-तंतु है, वैसे नागरी लिपि भी। अपनी-अपनी भाषाएँ अपनी-अपनी लिपि में लोग लिखते हैं। वे लिपियाँ अच्छी और सुन्दर भी हैं। लेकिन साथ-ही-साथ ऐच्छिक रूप से, नागरी में भी वे भाषाएँ यदि लिखी जायँ, तो वे एक-दूसरे के लिए बड़ी सुलभ होंगी। भारत के लिए नागरी लिपि ही ऐसी समान लिपि हो सकती है, रोमन नहीं, क्योंकि थोड़े से फर्क से नागरी यह नेपाली, हिंदी, गुजराती, मराठी, पंजाबी आदि में लिखी जाती है। संस्कृत का कुल आध्यामिक साहित्य भी इसमें है। जैन, बौद्ध-धर्म के काफी ग्रंथ भी इसीमें हैं। दूसरी लिपियों के साथ भी इसका गहरा संबंध है। मलयालम् में जिस तरीके से 'प' बनाते हैं, वही तरीका नागरी में भी है। वर्णमाला भी समान है। दक्षिण की भाषाओं के लिए आवश्यक ह्रस्व ए भी नागरी में है, जैसे तुलसी-रामायण में है। इस तरह अन्य लिपियों के साथ नागरी लिपि का गहरा संबंध है।

इस तरह स्नेहबंधन हमें बढ़ाते रहने चाहिए और जाति-धर्म और पक्ष के रूप में जो टुकड़े हो रहे हैं, वे जोड़ कर भारत को एकरस बनाना चाहिए। भाषा-लिपि आदि सांस्कृतिक स्नेह बंधन हैं, तो आर्थिक क्षेत्र के लिए भूदान-संपत्तिदान आदि स्नेह-बंधन के ही साधन हैं।

—विनोबा

(निलेश्वर, कण्णनूर १६-८-'५७)

केरल की बुनियादी समस्या और उसका हल

(विनोबा)

केरल में बहुत उत्साह और शक्ति है, लेकिन उसका उपयोग नहीं हो रहा है, क्योंकि लोग पार्टियों, जातियों और धर्मों में बँट गये हैं! यहाँ हिंदू, ईसाई और इस्लाम धर्म के कई लोग अलग-अलग समाजों में बँट जाते हैं और परस्पर में सहयोग नहीं करते। एक-दूसरे को वे श्रेष्ठ और हीन भी समझते हैं। जब तक सारे धर्म वाले आपस में समभाव नहीं रखेंगे, तब तक झगड़े कायम ही रहेंगे। यहाँ की अनेक जातियाँ भी इसी तरह अपना-अपना अलग समाज लिये बैठी हैं। अब इनमें पार्टीभेद भी शामिल हो गया है, जो भाई-भाई को भी दुश्मन बना रहा है!

पूछते हैं कि यहाँ जमीन कम और जन-संख्या ज्यादा है, तो क्या करें? परंतु पहले हम आपसी कलह को तो रोकें! आपस की लड़ाइयाँ बंद होंगी, तो दो के चार हाथ होंगे और ताकत बनेगी। फिर जनसंख्या का सवाल नहीं सतायेगा। पार्टियाँ भी हो सकती हैं, परंतु कोई कॉमन प्रोग्राम, कॉमन ग्राउंड और कॉमन फ्रंट भी तो होना चाहिए! सैद्धांतिक मतभेदों पर हम चर्चा-मंडलों में सोचते बैठें, परंतु एक साथ, एक हृदय होकर काम करना तो सीखें! झगड़ों से देश कभी आगे नहीं बढ़ता!

औद्योगिक दृष्टि से यह पिछड़ा हुआ देश है! मार्क्स की थियोरी जहाँ निकली, वहाँ उद्योग बढ़े हुए थे और संपत्ति इकट्ठी हुई थी। उसीमें से वर्ग-संघर्ष निकला। लेकिन न यहाँ धंधे हैं, न संपत्ति! ऊपर से अनेक भेद हैं ही। उस में यदि वर्ग-संघर्ष भी जुड़ा, तो परस्पर-संहार ही होगा और हिंदुस्तान की आजादी को खतरा भी पहुँचेगा।

यहाँ तो फ्रांस की-सी हालत है और ये भेद भी आयडियालाजी के नहीं, व्यावहारिक हैं! सत्ता के जरिए कैसे सेवा होगी, इसीके लिए सारे मतभेद हैं! सारी दारोमदार सरकार पर! एकाग्रतापूर्वक, अनन्य सत्ताभक्ति में सब लगे हैं। भक्ति एक होती है अनुरोधी, जैसे भरत और लक्ष्मण की थी। दूसरी भक्ति रावण की, जो विरोधी थी। दोनों को रामजी के बिना गति नहीं! एक स्तुति करता है, तो एक गाली देता है। वैसे ही कुछ लोग सरकार की भक्ति करने में, तो कुछ उसे गाली देने में तन्मय हैं। सारा-का-सारा चिंतन वही, भाषा भी वही, प्रश्न भी वे ही, विचार भी वे ही! एक बूढ़ा पैदल चलते-चलते आ रहा है, उसके कुछ प्रयोग हुए हैं, उसका कुछ ज्ञान है, कुछ अनुभव भी है, लेकिन इन सबसे उनको कोई मतलब नहीं! एक ही तरह का चिंतन चलता है और वे चाहते हैं कि बाबा भी वैसा ही चिंतन करे! यह सब देख कर बड़ा दुःख होता है।

आज सरकार याने भगवान् ही बन गयी है और हम मिट्टी के ढेले हो गये हैं, वह चाहे गणेश बनाये चाहे बंदर! नागरिक की कोई हस्ती नहीं। आत्मा में कोई ताकत महसूस नहीं होती। क्या यही स्वराज्य है? कुछ हिंदू हैं, कुछ मुसलमान और कुछ खिस्ती। कुछ काँग्रेसी हैं, कुछ कम्युनिस्ट और कुछ पी. एस. पी वाले। कोई छूत हैं, कोई अछूत। कोई मालिक है, तो कोई मजदूर! इस तरह गाँव में कोई "हम" हैं ही नहीं! तब गाँव एक कैसे बनेगा? यहाँ तो घर-घर में पार्टी है। पर यहीं शंकराचार्य और रामानुज हो गये हैं, जिनमें सैद्धांतिक भेद भी थे, लेकिन दोनों ने एक ही तरह का धर्मोपदेश सिखाया, इसलिए समाज बना। पर आज समाज को टुकड़े-टुकड़े किये जा रहे हैं। कहते हैं, देश पर हमला हो, तब एकता करेंगे! याने संकट आवे तब एक होंगे! पर आज जो संकट हैं, क्या वे कम हैं? इससे अधिक कौनसा संकट चाहते हैं, सो हम परमेश्वर से प्रार्थना करें कि वह ऐसा संकट आप पर डाले, जिससे कि सारे भेद नष्ट हों!!

केरल के लिए ऐसा ही कार्य चाहिए, जिससे किसी का विरोध न हो और सबकी ताकत एकत्रित हो! सर्वोदय ही ऐसा एक कार्यक्रम है!

(पाप्पीनीशेरी, कण्णनूर १२-८-'५७)

www.vinoba.in

क्रांति की साधना का अभिनव प्रयोग: ग्रामदान

(श्री अच्युत पटवर्धन)

युवावस्था में हम लोगों को 'क्रांति' शब्द का बड़ा आकर्षण था। मगर हमारी क्रांति की दृष्टि बहुत संकुचित थी। अंग्रेजी शासन के खिलाफ विरोध-शक्ति संगठित करने वालों की एक जमात क्रमिक विकास को पसन्द करती थी, जो सुधारक कहलाती थी। इसके प्रतिकूल, जन-शक्ति के आधार पर जनता का मोर्चा बाँध कर अंग्रेज़ों को हटाने का विचार 'क्रांतिकारी' कहलाता था। हम लोग इन दोनों विचारधाराओं में से जनसंघर्ष के रास्ते को पसन्द करते थे। उसका प्रभाव हमारे ऊपर था और उसीको हम 'क्रान्तिमार्ग' मानते थे! इस विचार पर मेज़िनी और मेक्स्विनी आदि की बड़ी छाप थी। जब महात्मा गांधी ने इन दोनों विचारधाराओं के बीच अहिंसात्मक जन-आन्दोलन के रूप में असहयोग और सत्याग्रह का मध्यम-मार्ग रखा, तो हमने उसको अपना लिया और अहिंसा में विश्वास न रखते हुए भी राजनीतिक जीवन की वास्तविक मर्यादा (देश की जनता की निःशस्त्र अवस्था) को ध्यान में रखते हुए और बहुत कुछ गांधीजी के व्यक्तित्व से अभिभूत होकर हम १९३० के भारतीय नवयुवक, अपनी क्रांतिकारी प्रवृत्ति को, जनसंघर्ष के आधार पर अभिव्यक्त करते रहे।

समाजवाद की ओर

सन् १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलन के साथ-साथ दुनिया की बढ़ती हुई आर्थिक मन्दी की लहर हिन्दुस्तान के शहर और ग्राम तक पहुँच गयी और उसने अपनी चपेट में हिन्दुस्तान के किसानों-मज़दूरों को भी जला-भुना दिया, तब हमारी दृष्टि में समाजवादी आन्दोलन का महत्त्व बढ़ने लगा। वैसे भी, रूस के क्रांतिकारी समाज-परिवर्तन का असर कुछ अरसे पहले से ही नुमायाँ हो रहा था, मगर आर्थिक मन्दी की वजह से समाजवाद एक तात्कालिक युग-प्रवृत्ति के रूप में दीख पड़ा। उन दिनों हम लोगों पर बर्ट्रेण्ड रसेल की दो पुस्तकों (Principles of Social reconstruction और Roads of Freedom) का काफी असर पड़ा था। इस तरह क्रांति की व्याख्या कुछ विस्तृत हो गयी और आर्थिक व सामाजिक शोषण को मिटाने वाले राजनैतिक परिवर्तन को ही हम क्रांति का सीमा मानने लगे।

हमें दुनिया की सबसे बड़ी मुसीबत आर्थिक शोषण यानी भूख, बेरोज़गारी, किसानों की कर्ज़दारी की दास्यता आदि लगी और हमें लगा कि जिस वक्त आर्थिक समस्या हल हो जावेगी, तब आर्थिक समता सामाजिक समता को स्थापित करने में सहायक होगी। इस तरह आर्थिक व सामाजिक शोषण के विनाश से एक नयी संस्कृति अपने आप, वृक्ष पर फूल और फूल से फल जिस सहजता से पनपता है, उसी सहजता से पनपेगी। हमारी विकास की दृष्टि पूर्णतया भौतिकवादी थी और हमारी यह धारणा थी कि भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति से ही समाज का नैतिक उत्थान सधेगा। इसके लिए शिक्षा की जरूरत होगी, तो वह दी जा सकेगी। भौतिकवादी दृष्टि में समाज-जीवन के अन्दर संघर्ष का बीज उपयोगी वस्तु के स्वामित्व में माना जा रहा था। मर्यादा मन की है, भौतिक जीवन की नहीं, यह सिद्धान्त हम नहीं देख सके थे।

आज़ादी मिलने के ५ साल बाद ही हमें फिर असन्तोष और 'यह आज़ादी झूठी है' के नारे सुनायी पड़ने लगे। जनता में लापरवाही, अधिकारियों में मद और विरोधी दलों के मत्सर ने आज़ादी की छीछालेदर कर दी। बीसवीं सदी के प्रथमार्द्ध में विज्ञान के आधार पर हुई भौतिक प्रगति के फलस्वरूप अमेरिका, रूस, चीन आदि देशों में भूख की समस्या, बेरोजगारी की समस्या और आर्थिक दैन्य का ह्रास जाता रहा, पर मानव-जीवन का सांस्कृतिक स्तर नहीं बढ़ सका। जुआ, शराबखोरी या अन्य ऐसे ही व्यवसायों में पड़ कर भले ही भौतिक उन्नति हो, पर जीवन-दृष्टि बहुत तंग रहती है। ऐसे समाज में स्वतंत्रता का सही अनुभव मनुष्य नहीं कर सकता।

अब ऐटम बम के विकास के बाद विश्व-संघर्ष और संसार की समस्या विचारशील लोगों के सामने खड़ी हो गयी है और तब से भौतिक विकास पर्याप्त नहीं है, यह सत्य अधिकाधिक लोग समझने लगे हैं। इसके साथ-साथ यह भी समझ में आने लगा है कि भौतिक विकास जब तक हमारा साध्य है, लक्ष्य है, तब तक मद-मत्सर, राग-द्वेष का असर हमारे दिलोदिमाग़ पर पूरी तरह से रहेगा। मूल्य-परिवर्तन से मतलब है, मनुष्य का अपने अनुभवों से यह देखना कि केवल भौतिक साधनों से मानव-जीवन समृद्ध नहीं हो सकता। भौतिक साधनों की विपुलता एक हद तक समाज के भरण-पोषण के लिए आवश्यक है, फिर भी वह साधन-रूप है। साधन किस चीज़ का? मनुष्य के विकास में उसकी सृजन-शक्ति खुल कर फूट पड़े और व्यक्ति-व्यक्ति में उसका नवउन्मेष एक विराट विश्वदर्शन की तरह नुमायाँ हो जाय। मानवजीवन में जो भी विकासशीलता है, उसके बंधन टूट जायें और मानवता का मुक्त विहार जीवन का सहज धर्म बन जाय। यह शक्ति विश्व की कोटि-कोटि जन्तु-सृष्टि में केवल मानव मात्र को उपलब्ध है। मानव की यह ऐश्वर्यशाली विरासत जब उसकी प्रतिभा-शक्ति को आवाहन करने लगती है, तो उस मानव में एक नयी तेजस्विता शब्द-शब्द में प्रतीत होने लगती है। काव्य-कला की अधिष्ठात्री भी यही शक्ति है।

क्रांति याने मूल्य-परिवर्तन!

मानव की इस जीवन-प्रेरणा को समाज-जीवन में सजग बनाना ही हेतु है, जिसका भौतिक-विकास साधन-रूप है। मगर यह कार्य तब तक पूरा नहीं होता, जब तक मानव को भौतिक ऐश्वर्य की मर्यादा का अनुभव-ज्ञान नहीं मिलता। भौतिक ऐश्वर्य नाकाफी है। उससे हमारा निर्वाह नहीं हो सकता। उसके बावजूद जीवन दैन्यमय रहेगा, यह सत्य मूल्य-परिवर्तन का द्योतक है। जब केवल बौद्धिक तर्क से नहीं, बल्कि दिल से मानव भौतिक ऐश्वर्य से ऊब कर जड़ को हटा कर उस चित्त-प्रेरणा के पीछे स्वस्थ होकर निकल पड़ेगा, तब वही हृदयपरिवर्तन की जड़ होगी। **क्रान्ति का मतलब मूल्यपरिवर्तन है, केवल मतपरिवर्तन नहीं।** हम लोगों के जीवन में विचारों का, सिद्धान्तों का, नव-नवीन सम्प्रदायों का बोलबाला रहा, मगर मत एक बहुत ही छोटी चीज है। वह लोहा है, पारस नहीं। मत से दुनिया बदल नहीं सकती। नवसमाज-निर्माण का आधार मूल्य-परिवर्तन है और उसकी जड़ हृदय-परिवर्तन है।

क्रांति का यह मकसद पिछले पचीस वर्षों में जैसा-जैसा हमें दीख पड़ा, हमने यहाँ बतलाया है। ९ अगस्त का दिन 'करेंगे और मरेंगे' के महान् क्रांतिकारी संग्राम की याददाश्त के तौर पर देश में मनाया जाता है। हमको भी उस महान् जन-आन्दोलन में तद्रूप होने का महत् भाग्य मिला था और उसके यशापयश से हमारी विवेक-शक्ति को भरण-पोषण प्राप्त हुआ है। इसीलिए आज ९ अगस्त के दिन क्रांति की समस्या के बारे में आपके साथ सहचिन्तन करने का यह मौका आपने दिया इसलिए आपका आभारी हूँ।

क्रांति का स्फुल्लिंग!

अन्त में मैं यह कहना चाहता हूँ कि भौतिक परिवर्तन और मूल्य-परिवर्तन का जो गहरा कार्य-कारण सम्बन्ध है, उसके बारे में मैं बहुत दिनों से सोच रहा था। विनोबाजी के भूदान और ग्रामदान-आन्दोलन में मैंने अनोखा प्रकाश पाया। खास कर ग्रामदान के विचार के रूप में वर्तमान क्रांति की साधना का यह एक अभिनव प्रयोग देश में शुरू हुआ है। भूदान और ग्रामदान से ग्रामीणों की तात्कालिक आर्थिक समस्याओं का हल कुछ हद तक जरूर मिलता है। तात्कालिक आवश्यक आर्थिक सुधार के रूप में उसका महत्त्व नगण्य नहीं कहा जा सकता, अपितु उसका ऐतिहासिक काल एक नयी मनोवृत्ति का बीजारोपण करने का है। सहजीवन का एक नया प्रयोग, एक नयी मनोवृत्ति का समाज-परिवर्तन में विकास, इस दृष्टि से ग्रामदान में मैं क्रांति का स्फुल्लिंग देखता हूँ।

हमारे क्रांति के विचार केवल बुद्धि-विलास न बनें। 'ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या' की तरह वह एक वैचारिक संकेत न बने, इसके लिए कम-से-कम हिन्दुस्तान जैसे देश में बहुत सतर्क रहना चाहिए। ग्रामदान में इस दोष का सहज परिमार्जन मिल जाता है, क्योंकि ग्रामदान एक महान् विचार ही नहीं, किन्तु वीर वृत्ति का कर्म भी है*

* ९ अगस्त, '५७ को काशी-तत्त्व-सभा में दिये गये भाषण पर आधारित।

सर्वोदय के चार आधार-स्तंभ

जब तक पार्टी-पॉलिटिक्स, हिंसा-शक्ति पर विश्वास और व्यक्तिगत मालकियत का गलत खयाल बना रहता है, तब तक दुनिया की उन्नति नहीं होती है। अतः ये चार चीजें खयाल में रखनी होगी: (१) जब तक हिंसा पर विश्वास है, तब तक दुनिया का काम बढ़ेगा नहीं। (२) पार्टी-पॉलिटिक्स में जो विश्वास है और उस खयाल से जो रचना होगी, वह टिकेगी नहीं। (३) जमीन की व्यक्तिगत मालकियत टिकेगी नहीं एवं जमीन, संपत्ति सबकी होनी चाहिए। सबको मिल कर काम करना है और जो भोग भोगना है, वह सब मिल कर भोगना है और (४) जाति-भेद, धर्म-भेद नहीं मानना चाहिए। ये चार बातें सर्वोदय के चार मुख्य पीलर्स (आधार-स्तंभ) हैं।

(पोइलकाव, केरल, २४-७) —विनोबा

www.vinoba.in

अहिंसक क्रांति की परंपरा में भू-'दान' 'यज्ञ'

(विनोबा)

भारत में प्राचीन काल से ज्ञान की अखंड परंपरा चली आयी है। शायद चीन को छोड़ कर दुनिया में ऐसा दूसरा कोई देश नहीं है; जहाँ इस तरह से इतिहास-परंपरा अखंड चली आयी हो। आज के ग्रीस, रोम, मिस्र प्राचीन नहीं रहे, नये ही बन गये हैं। अन्य प्राचीन देशों की भी यही हालत हुई है। परंतु हिंदुस्तान में ज्ञान की अखंड परंपरा बराबर चली आयी हुई दीखती है।

ऋग्वेद दुनिया का शायद पहला ग्रंथ है। इसमें शंका हो, तो भी हिंदुस्तान का तो वह प्रथम ग्रंथ है ही। उसके सैकड़ों शब्द आज की हमारी भाषाओं में हैं। जैसे "अग्निमीळे पुरोहितम्" के 'अग्नि' और 'पुरोहित', "यज्ञस्य देवमृत्वियम्" के 'यज्ञ' और 'देव', "होतारं रत्नधातमम्" के 'होतृ' और 'रत्न', ये शब्द आज भी हमारी भाषाओं में घुलेमिले हुए हैं। हमने ऊपर 'सैकड़ों' कहा, परंतु ऐसे शब्द हजार तक निकल आयेंगे। मैं दूसरे ऐसी किसी देश की भाषा नहीं जानता, जिसमें पाँच हजार साल पहले के शब्द आज भी प्रचलित हों।

इसका अर्थ यह है कि इस देश में एक ज्ञान-विचार प्रकट हुआ और वह प्रवाहित होता रहा। पुराने शब्द टूटे नहीं, उनमें नया अर्थ भर दिया गया। इसका नाम है प्रवाह। 'लाऊड स्पीकर' जैसी चीज़ तब नहीं थी, तो ऐसे शब्द भी उस समय नहीं थे। परंतु इनका ज्ञान से कोई संबंध नहीं है। यह भौतिक वस्तु है। जिसको 'मानव-मन' कहते हैं, उससे इनका संबंध नहीं है। "मानसिक शब्द" तो संस्कार और सभ्यता के सूचक होते हैं। जहाँ ज्ञान-परंपरा अखंड नहीं रहती, जहाँ एक जमाने का प्रभाव दूसरे जमाने के प्रभाव के सामने एकदम क्षीण हो जाता है, वहाँ ऐसी परंपरा नहीं चलती। अंग्रेजों के आने से भी यहाँ के विचार-प्रभाव में खंड नहीं पड़ा, पूर्ति ही हुई। यदि विचार-प्रवाह खंडित हो जाता, तो शब्द भी खंडित हो जाते। लेकिन मानसिक शब्द वैसे ही चले आये हैं। "यज्ञ" शब्द को ही लीजिये। एक जमाने में यज्ञ में बकरों का बलिदान होकर ब्राह्मण भी उसका प्रसाद-सेवन करते थे, परंतु मांसाहार-परित्याग का जमाना जब आया, तो करोड़ों लोगों ने मांसाहार छोड़ा। अब ५०-६० साल से, भारत के इस महान् विचार के प्रभाव-स्वरूप, पाश्चात्य देशों में भी मांसाहार-परित्याग का आरंभ हुआ। लेकिन यहाँ बकरे का बलिदान रुका, तो भी 'यज्ञ' शब्द खंडित नहीं हुआ! एक नया विचार उसमें आया, जिसने पुराने अर्थ को तोड़ कर समाज को आगे बढ़ाया। पर अगर यह शब्द ही खंडित हो जाता, तो ज्ञान-परंपरा ही खतम हो जाती! लेकिन इसी परंपरा ने मांसाहार का परित्याग करा कर भी 'यज्ञ' शब्द का विस्तार ही किया कि "समाज-सेवा के लिए जो त्याग करना पड़ता है, वह यज्ञ है।"

आध्यात्मिक क्रांति

मनुष्य में कुछ पशु-अंश भी रहता है। 'काम-क्रोध-लोभ-मोह' यह मानवता नहीं, पशुत्व है। इस 'पशुत्व' का बलिदान ही सच्चा बलिदान है। 'यज्ञ' में 'पशु' के बदले इसी 'पशुत्व' का बलिदान स्वीकार हुआ। यह आध्यात्मिक क्रांति है कि समाज आगे बढ़ा, लेकिन पुराने शब्दों को तोड़ कर नहीं। अगर वह वैसा करता, तो जीवन का यह प्राणरस भी खंडित हो जाता।

वृक्ष के साथ चिपके रहने से ही शाखाएँ सजीव बनी रह सकती हैं। वृक्ष हैं—प्राचीन परंपरा और शाखाएँ हैं—नये संस्कार! हम नये संस्कार ग्रहण करें, लेकिन प्राचीन परंपरा से टूट कर नहीं! परिणामस्वरूप एकरसता भी बनी रहेगी और प्राचीन परंपरा भी खंडित नहीं होगी।

आम की गुठली बोते हैं, जो शुरू में पत्थर-की-सी कठोर होती है, लेकिन उसीमें से कोमल अंकुर फूट निकलता है। गुठली से ही वह रस लेता है। फिर एक बड़ा 'स्कंध' होता है, लेकिन वह खाने लायक नहीं होता, उसकी लकड़ी रसोई, मकान आदि बनाने के काम आती है। इस प्रकार नया रूप वह लेते जाता है और एक-रसता में बाधा नहीं आती। फिर शाखाएँ, पत्ते, बौर, आम आदि के रूप में वह वृक्ष फलता-फूलता है और हर एक का अलग-अलग उपयोग होता है। कच्चे आम का भी फिर अचार बनता है और पका आम बनने पर मधुर फल के रूप में लोग उसे खाते हैं। बकरी पत्ते खायेगी, लेकिन स्कंध नहीं। अचार कच्चे आम का बनेगा, लेकिन पत्तों का नहीं। इस तरह फर्क तो है, लेकिन प्रारंभ से अंत तक एकरसता कायम रहती है और आम्ररस लकड़ी को यह नहीं कहता कि तू पुराना समाज है, तेरा-मेरा कोई संबंध नहीं! वह यही कहता है कि तू मेरा पिता है। इस तरह वह स्नेह-संबंध कायम रखता है। जहाँ समाज का अखंडित विकास होता है, वहाँ भी इसी तरह प्राचीन काल से आधुनिक काल तक 'अनुसंधान' (पूर्वापर संबंध) बना रहता है। पुरानी परंपरा समाप्त करके नये सुधार करते हैं, तो उससे ताकत नहीं बढ़ती और जड़ें गहरी न रहने से स्थिर बुद्धि के बदले मानसिक चंचलता पैदा होती है। पुरानी परंपरा का स्पर्श शक्ति प्रदान करता है, नया विचार माधुर्य उत्पन्न करता है। भारत में दोनों एकत्र हुए हैं। पुराने शब्दों में नये अर्थ भर कर उनका विकास हम करते रहते हैं। यह अहिंसक क्रांति की प्रक्रिया भारत में चली आयी है।

दान याने संविभाग

'भूदान' के 'दान' शब्द को लेकर लोग कहने लगे, "बाबा तो भिक्षा मांगने निकला है।" लेकिन हमने कहा, "नहीं, हम सबका हक माँग रहे हैं। जरा शंकराचार्य का भाष्य तो खोल कर देखो! उन्होंने कहा कि दान याने सम्यक् विभाजन!

शरीर का खून केंद्रित हो जाने से शरीर को खतरा है, उसी तरह संपत्ति समाज में रुधिराभिसरणवत् चलनी चाहिए। समवेदना और अनुबंध जीवित शरीर के लक्षण हैं। उसी तरह समाज भी जीवित होता है, तो संपत्ति का केंद्रीयकरण नहीं होता। शरीर में खून बढ़ गया, तो भी खतरा है और खून कम हुआ, तो भी खतरा है। इसलिए उसका सुव्यवस्थित अभिसरण होना चाहिए। यही बात समाज के लिए शंकराचार्य के 'दानं संविभागः' में है। यहाँ दान 'भीख' नहीं है! शंकराचार्य ने ही नहीं, बुद्ध ने तक कहा है "यमाहु दानं परमं अनुत्तरं। यं संविभागं भगवा अवण्णयी।"

इस तरह हजार-डेढ़ हजार साल में एक ऐसा विचार सामने आया, जिसने दान का पुराना अर्थ नहीं माना। "दान देने से पुण्य-प्राप्ति होती है, अर्ध इंद्रासन मिलता है; गोदान से चंद्रलोक, स्वर्णदान से इंद्रलोक, भूदान से पुण्य प्राप्त होता है," इस तरह की पुरानी दान-पद्धति उन्हें स्वीकार नहीं हुई, न उससे अहिंसक क्रांति बन सकती थी। ऐसे दानों से तो देने वाला अहंकारी और लेने वाला दीन ही बनता है। इसलिए ऐसा दान काम का नहीं है, यह क्रांतिकारी विचार सामने आया।

लेकिन आधुनिक, पाश्चात्य विद्या पाये हुए लोग उस जमाने में होते, तो वे इस शब्द की निंदा करते हुए इस शब्द को ही तोड़ डालते! परिणामतः दान की स्तुति करने वाली गीता, उपनिषद् और वेद भी निकम्मे मान लिये जाते! परंतु गीता, उपनिषद्, वेदादि द्वारा प्रशंसित 'दान' शब्द को न तोड़ कर उन्होंने उसमें 'दानं संविभागः' का नया अर्थ भर दिया। यह अर्थ समझ कर आप गीता, उपनिषद् आदि पढ़िये, तब उन्हीं पुराने शब्दों से नया प्रकाश मिलेगा। इसी तरह 'यज्ञ' याने मनुष्य में के पशुत्व का छेद, जो स्वाध्याय-जप-तप-सेवादि से होगा। इसमें 'यज्ञ' शब्द तो कायम रहा, लेकिन नया अर्थ उसको मिल गया। 'तपश्चर्या' के रूप में कोई उलटे खड़े होते थे, ठंढे पानी में रहते थे, अग्नि जला कर बीच में पड़े रहते थे। इस तरह 'तप' का एक अर्थ चला। लेकिन गीता ने 'सत्य, प्रेम और स्वाध्याय' को वाणी का तप बता कर एवं वृद्ध और ज्ञानी की सेवा, ब्रह्मचर्य-पालन आदि को देह की तपस्या बता कर पुराने शब्द के आदर को कायम रखा!

शब्द कायम रखें, पर अर्थ बदलें

परंतु आज पुराने शब्द छोड़ कर नये शब्द बाहर से 'इंपोर्ट' करते हैं और उनका ठीक अर्थ प्रकट करने के लिए यहाँ प्रतिशब्द नहीं मिलते! 'रॅशनलाईजेशन' (Rationalisation) शब्द ही लीजिये। इसका हमारी भाषा में क्या प्रतिशब्द होगा, लगे ये सोचने! 'रॅशन' पर से 'रॅशनल', फिर 'रॅशनलाइज' और फिर 'रॅशनलाईजेशन!' पर एक इंच लंबा शब्द बना कर भी कोई उपयोग नहीं! 'रॅशनलाईजेशन' याने कारखाने में हजार मजदूरों की जगह पाँच सौ मजदूरों द्वारा उतना ही काम कराना! यह 'रॅशनलाईजेशन' नहीं, मोस्ट इर्रॅशनल (अति बुद्धि-विरोधी) है! वस्तुतः यह कल्पना ही यहाँ के लिए त्याज्य और अशोभनीय है। यहाँ तो पुराने शब्दों से ही कल्पना का विकास होगा—जैसे कि हम पुराने समाज से सर्वथा भिन्न, ऐसा नया सर्वोदय-समाज कायम तो करना चाहते हैं। लेकिन फिर भी, आम्रफल जैसा परिपक्व और मधुर होते हुए भी वह पुरानी परंपरा को तोड़ने वाला कतई नहीं है। क्रांतिकारी विचार की यह खूबी होती है कि वह पुराने विचार में से नवविचार में कुशलतापूर्वक प्रवेश कराता है, जैसे कुशल इंजिनीयर हमको

www.vinoba.in

ऊपर-ऊपर चढ़ा कर भी उसका भान नहीं होने देता ! यहाँ 'शब्द' कायम रखने की स्थूल कल्पना नहीं है, 'अर्थ' बदलने की ही सारी प्रक्रिया है।

समाज में दो तरह की विचारधाराएँ होती हैं : एक पुरानी, दूसरी नयी। ऐसा भेद न रहा, तो समाज की प्रगति खत्म हो जायगी। परंतु बाप की विचारधारा से बेटा दो कदम आगे है, इसलिए वह बाप को पसंद नहीं और बाप पीछे है, यह बेटे को पसंद नहीं, तो दोनों का झगड़ा होता है। राम और परशुराम, दोनों ही नारायण के अवतार थे, लेकिन पहले परशुराम ने राम को नहीं पहचाना, बाद में उसका पराक्रम देख कर पहचाना। इसलिए नये-पुराने के बीच का झगड़ा तो कुशलता से मिटाना चाहिए और भूदान द्वारा यही हो रहा है।

यहाँ कम्युनिस्ट भी मानते हैं कि मालकियत कानून से नहीं मिट सकती। इसलिए वे सीलिंग की बात करते हैं ! लेकिन सीलिंग याने जो निजी मालकियत ढिली हुई, उसको फिर एकदम मजबूत बनाना ! और, लोग भी कानून के पहले आपस में जमीन बाँट चुके हैं ! 'प्रत्युत्पन्नमति' और 'अनागत विधाता,' ये दो प्रकार होते हैं। 'अनागत विधाता' को आगे की बात पहले से मालूम हो जाती है और 'प्रत्युत्पन्नमति' को चीज बनते हुए पता चल जाता है। इस तरह यहाँ दोनों ने अपनी तैयारी कर ली है। जो थोड़े-से मूर्ख बचे होंगे, उनकी ही कुछ जमीन सरकार को सीलिंग के द्वारा मिल जायेगी ! यह तथ्य पहचान लेने के कारण ही आज कम्युनिस्ट बाबा के काम को प्रेम से देखते हैं। हमारे काम में इसी तरह रायटिस्ट और लेफ्टिस्ट एक होते हैं।

सारांश, हमें समाज में सुधार नहीं, क्रांति करना है, लेकिन वह इस तरह कि सबका सहयोग मिले। यह सहयोग पुराने शब्द तोड़ने से नहीं, उनमें नया अर्थ भरने से मिलेगा और बुद्धिभेद भी नहीं होगा ! दान माँगने जाते हैं, तो लोगों के हृदय में प्रवेश होता है। हम उनके घर में दरवाजे के द्वारा प्रवेश चाहते हैं। इसलिए जहाँ का दरवाजा खुला है, वहीं से प्रवेश करना होगा। अगर दीवाल से होकर प्रवेश करेंगे, तो टक्कर होगी ! क्रांति तो ऐसी कुशलता से पूरी करनी है कि प्राचीन काल की ज्ञानधारा और विचारधारा कुंठित न हो और न यह खयाल हो कि कोई हमारे जीवन के खिलाफ बात कर रहा है ! इस तरह हम सर्वोदय का कार्य कर रहे हैं।

(कण्णनूर, केरल, १०-८-'५७)

भेड़ और गड़रियों की कहानी : विनोबा की ज़बानी !

प्राचीन काल में अव्यवस्था और भय के परिणामस्वरूप समाज की एक व्यवस्था बनी, जो राजा, सरदार और सरकार कहलायी। सरकार याने जैसे गोपालन, मधुमक्खी-पालन, वैसे ही मनुष्य-पालन की व्यवस्था ! भेड़ों को तो गड़रिया चाहिए था ! पहले कोई भी उनका रक्षक जबर्दस्ती से बन ही जाता था। फिर भेड़ों ने कहा, "अपना गड़रिया हम चुनेंगे !" तब डेमोक्रेसी शुरू हुई। भेड़ों ने गड़रिया चुना और उसके हाथ में लकड़ी भी दी—याने सेना बनाने की ताकत सौंपी ! इस तरह उसे सुसज्जित करके, भेड़ों ने पाँच साल तक के लिए अपना प्रतिनिधि भी उसे मान लिया। पर भेड़ तो गरीब के गरीब ही रहे। कोई गड़रिया चार करोड़ भेड़ों का, तो कोई पच्चीस करोड़ का और कोई पचास करोड़ का पालन करता है और वे जंगल के एक-एक हिस्से में बँटे हुए हैं ! भेड़ें बेचारी चर रही हैं। लेकिन गड़रियों को लगता है कि फलाँ गड़रिया खतरनाक है, वह हम पर आक्रमण करेगा ! भेड़ तो चरने में लगे हैं। वे सोचते भी नहीं ! और अगर उनमें ही झगड़ा हो गया, तो गड़रिया उन्हें चुप करने के लिए लकड़ी लेकर तैयार ! याने कोर्ट, जेल, न्याय और फाँसी !

गड़रिया यह भी चाहता है कि जंगल का ज्यादा हिस्सा हमको मिले, क्योंकि उसके अभाव में हमारी इतनी अधिक भेड़ों का पालन नहीं हो सकता। हमारी भेड़ों का "स्टैंडर्ड ऑफ लीविंग"तो ऊँचा होना चाहिए न ? दूसरा गड़रिया भी यही कहता है ! फिर दोनों में द्वेष उत्पन्न हो जाता है और सेनाएँ बढ़ती हैं। तब फिर वे अपनी-अपनी भेड़ों से कहते हैं, "देखो, तुम्हारे लिए तो लकड़ी याने पुलिस ही काफी है, लेकिन दूसरे गड़रियों के आक्रमण से बचने के लिए फौज चाहिए ! उसके बिना तुम्हारा बचाव नहीं होगा। पहले लकड़ी एक हाथ में दी थी, अब दूसरे हाथ में अणुबम दे दो और इतना पैसा मंजूर करो।" भेड़ अगर कहे कि इतना अधिक पैसा क्यों, तो गड़रिया कहेगा, "मूर्ख ! समझते नहीं हो कि इसके बिना तुम्हारा पालन और रक्षण कैसे होगा ?" भेड़ घबरा गये। फौरन पाँच हजार करोड़ की स्वीकृत दे दी ! इस तरह व्यवस्था ही अव्यवस्था बन गयी। अब दुनिया परेशान है कि इसमें से कैसी राह निकालें !

अपने-अपने देश में पार्टी-पॉलिटिक्स के भी झगड़े चला कर वे कहते हैं, "अरे उस गड़रियों को नहीं, मुझको चुनो !" इस तरह गाँवों में क्षुद्र स्वार्थ, देश में पार्टी-पॉलिटिक्स और जगत् में द्वेष और भय ! शुरू से अखीर तक झगड़े की ही सुव्यवस्थित योजना ! शांति और सुख के लिए ही योजना बनी, पर परिणाम उलटा हुआ ! पुराना ब्राह्मण कार्यारंभ में 'शांति, शांति, शांति', ऐसा तीन बार कहता था। ये मुल्क भी 'शांति' की चर्चा तो करते हैं, लेकिन बढ़ाते हैं, शस्त्रास्त्र ही ! इन सबसे बचने का उपाय यही है कि यह सारी-की-सारी योजना, शुरू से अखीर तक की, तोड़ देनी होगी। अर्थात् अपने गाँव का सारा इन्तजाम आपको करना होगा। जब तक प्रतिनिधियों के जरिये ही हम यह सब कराते हैं, तब तक हम खतरे में ही हैं !

आज चंद लोगों के हाथ में हमने अपना जीवन सौंप दिया है। वे हैं तो मनुष्य ही, लेकिन उन्हें हमने ही शस्त्र दिये और उन्हें राक्षस बना कर हम खुद अनाथ बन गये। विज्ञान भी आणविक शक्ति तक पहुँच कर कल्याणकारी नहीं, विध्वंसकारी ही बन रहा है। इसलिए विज्ञान के साथ अहिंसा जोड़नी होगी, केन्द्रीय सरकारों की ताकतें कम करनी होंगी और दंडशक्ति हटानी होगी।

पहले दंड संन्यासियों के हाथ में होता था। आज ३२ इंच चौड़ी छाती वाले तमोगुणी राक्षसों के हाथ में ! वे थे तो हमारे जैसे मनुष्य ही, पर हमने उनको शस्त्र और हमारी कुल जिम्मेवारी सौंप कर राक्षस बनने के लिए मजबूर किया ! फिर उनकी भोग-पूर्ति भी होनी चाहिए। 'वे हमारे रक्षक हैं', 'घर से बाहर रहते हैं', इसलिए उनको व्यभिचार के लिए कन्याएँ भी दी जाती हैं। हम जैसे भेड़ों की रक्षा के लिए हमारे गड़रियों ने उनको मुकर्रर किया है, तो उन्हें अच्छा खाना और भोग-विलास के साधन मिलने ही चाहिए, भले ही हम भूखों मरें।

कितनी हतबुद्धि है ! देश के सब विद्वान् और ज्ञानी अनाथ बन गये और दुर्जनों के हाथ में दंडशक्ति चली गयी ! ऊपर से देश-रक्षा के नाम पर सेना देशभक्त भी कहलायी ! पर क्या रामजी की सेना व्यभिचारी और शराबी थी ? 'रक्षक-सैनिक' तो वह होगा, जो त्यागी, सात्त्विक, शीलवान और कम से कम भोगी होगा।

गाँव में निजी मालकियत का विसर्जन हो, गाँव-गाँव के लोग एक ग्राम परिवार बनायें, गाँव के लिए ही सब सोचें, अनुभवी और परिपक्व बुद्धि वाले वृद्धों से मार्गदर्शन लें, अपना इंतजाम हम-आप करें, न्याय हम करें, पुलिस की जरूरत ही न रहे, इतना सारा हो, तो ही इस दुष्ट-चक्र में से बचाव हो सकता है।

उत्पादन-वृद्धि, ग्रामोद्योग, शिक्षा आयात-निर्यात पर प्रतिबंध, गाँव की सामूहिक दूकान, स्व-रक्षण—इन सब चीजों का इंतजाम गाँववाले कर सकते हैं, उनको करना भी चाहिए, क्योंकि असली ताकत गाँव वालों के पास ही है, केंद्रीकरण के कारण सरकार में ताकत होने का आभास मात्र होता है। इसके लिए आपके पास सर्वोदय-मंडल की ओर से सेवक आयेंगे, लेकिन काम तो आप ही करेंगे। वे तो निमित्त मात्र होंगे। लेकिन आपको किसी-न-किसी रूप में अपना संमतिदान तो देना ही होगा। पार्टी वालों को वोट देते हैं, तो वे आपकी जिम्मेवारी उठाते हैं। यहाँ उससे उलटा होगा। याने यहाँ हरेक सर्वोदय-सेवक ही बनेगा। आज यहाँ सात हैं, उसके सत्तर बनेंगे। फिर सात सौ और सात हजार, फिर एक करोड़ याने पूरा केरल ही ! पर ये सेवक अवतार नहीं हैं, जो आपके सिर पर बैठेंगे और आपकी जिम्मेवारी उठायेंगे ! वे तकाजा करने वाले रहेंगे, काम आपको करना होगा। वे तो आपके पैरों के पास रहेंगे और सेवा-सेना के रूप में ही काम करेंगे।

(पळयांगडी, कण्णनूर, १३-८-'५७)

---

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ

३० अगस्त सन् १९५७

पंद्रह अगस्त का नया कदम

(वीनोबा)

आज पंद्रह अगस्त है। ठीक दस साल पहले स्वराज्य मीला था। वीज्ञान-युग में यह जमाना छोटा नहीं है। लेकीन यहां का समाज पुराना है। अीसलीअे वह धीरे-धीरे चलता है। फीर भी छह साल में भूदान के कारण लोगों की जो भावना बदली है, वह समाधान की बात है। लोग पूछते हैं, आपने सत्तावन के साल में क्रांती की बात की थी। हमने कहा, हां, की थी और आज भी यही चाहते हैं की सत्तावन के अंत में समाज का कुछ अच्छा परीवर्तन हो। हमने यह अीसलीअे कहा था की '५७ में आज़ादी के दस साल पूरे होते हैं और गांधीजी को भी दस साल होते हैं। गांधीजी के पीछे हमने क्या कीया, अीसका लेखा हमको पेश करना होगा। तो छह साल में जो काम हुआ है, वह आश्चर्यकारक है। अीसलीअे सत्तावन साल की अुम्मीद हमने रखी थी और आज भी वह है। लेकीन जो काम हुआ, वह भी कम नहीं है, पर भगवद्-प्रसाद से वह हो रहा है और अीसमें सच्चे स्वराज्य के बीज हैं। दस साल पहले जो मीला, वह स्वराज्य की नीगेटीव व्याख्या के अनुसार स्वराज्य मीला। लेकीन सच्चा स्वराज्य तो हम तब कह सकते हैं, जब अपने गांव का अींतजाम हम करेंगे और जब वैसा सामर्थ्य और आत्मनीष्ठा पैदा होगी। स्वराज्य का साक्षात्कार हरेक को कराना होगा और राष्ट्रीय स्वातंत्र्य का रूपांतर ग्रामीण स्वातंत्र्य में कराना होगा। व्यक्तीगत मालकीयत मीटाने से ही हर व्यक्ती में अीस आज़ादी की अनुभूती होगी, क्योंकी वही ग्रामराज का प्रारंभ है।

अब प्राप्ती-पत्र ही दीजीये!

आज स्वतंत्रता-दीन है। आज कुछ-न-कुछ करना होता है। सुबह जब अेक भाअी भूदान-पत्र देने लगे, तो हमने कहा : "अब "दान-पत्र" नहीं," "प्राप्ती-पत्र" लेंगे। दानपत्र की जमीन बांट दो और लेने वाले के हस्ताक्षर के प्राप्ती-पत्र दो।" आज से हम यही करेंगे, चाहे दूसरे भले ही भूदान-पत्र लें। जीस माता ने बच्चे को जन्म दीया, वही अुसे दूध न पीलाये, तो क्या दूसरी कोअी बहन दूध पीलाने के लीअे आये? अीसलीअे समीती के लोगों की राह देखने की जरूरत नहीं। दाताओं से दानपत्र लें, जमीन भूमीहीनों को बांटें, अुन्हें अधीकार-पत्र भी दे दें और "अीतनी-अीतनी जमीन हमें मीली," अैसे हस्ताक्षर अुनसे लेकर वही "प्राप्ती-पत्र" हमको दे दें। छह साल में भूदान-वीचार की शांती-सेना के वीचार तक प्रगती हुअी है; अब आचार शुरू होगा।

सर्वोदय की दृष्टि :

साधन-शुद्धि का मतलब

१६ अगस्त के अंक में साध्य और साधन के विषय में कुछ विवेचन हमने किया। अब की बार हमारे रोज़मर्रा के काम के सिलसिले में साधन-शुद्धि का थोड़ा-सा विचार किया जा रहा है।

हम अपने काम में शुद्ध साधनों का प्रयोग कर रहे हैं या नहीं, इसकी सबसे बड़ी कसौटी यह है कि क्या लोग हमारी बात को हर हालत में यथार्थ मानते हैं? हमारे बारे में लोगों को यह पूरा विश्वास होना चाहिए कि ये लोग मूर्ख हो सकते हैं, भोले हो सकते हैं, कल्पनारम्य स्वप्न-जगत् में विहार करने वाले हो सकते हैं; लेकिन धूर्त या कपटी नहीं हैं! जो कहेंगे, वह यथार्थ होगा। इनके मुँह से गलत बात निकल सकती है, लेकिन ये झूठ से काम नहीं लेंगे। इनकी प्रक्रिया में धोखा-धड़ी के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। मतलब, हमारी सचाई के बारे में हमारे आलोचकों के भी मन में कोई शक नहीं होना चाहिए। उनकी निगाह में हम भ्रांत भले ही हों, लेकिन मिथ्यावादी न बनें।

शुरू-शुरू में भूमि-दान की आँधी-सी चली। उसमें कुछ लहरें उठीं और फेन भी आया। उस वक्त वह क्षम्य था, लेकिन अब जो भूमिदान, संपत्तिदान या ग्रामदान हो रहे हैं, उनके विषय में हमको पूरी तरह सावधान रहना चाहिए। जिन लोगों से ईमान और सचाई की अपेक्षा रखी जाती है, उनकी झूठ एक दफा से ज्यादा नहीं चलती, यह उन पर भगवान् की और समाज की विशेष कृपा है। धार्मिक साहित्य में धर्मराज का उदाहरण सर्वविदित है!

१९५७ में अगर हम दरअसल क्रांति के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करना चाहते हैं, तो हम सबका यह क्रांति-प्रवर्तक धर्म बन जाता है कि हम अपने निजी तथा सार्वजनिक जीवन में वास्तविकता और सत्यता का पालन निरंतर जागरूकता के साथ करें।

काशी, ता. १८-८-'५७ —दादा धर्माधिकारी

सार्वजनिक प्रार्थना की मर्यादा

भगवद्भक्त शिरोमणि संत तुकाराम ने एक जगह कहा है कि "हे ईश्वर, मुझसे जैसा कुछ आड़ा-टेढ़ा बनेगा, वैसा मैं तेरा गायन करूँगा।" आद्यकवि महर्षि वाल्मीकि के विषय में तो यह आख्यायिका प्रसिद्ध ही है कि "उलटा नाम जपत" "बाल्मिक भये ब्रह्म समाना।"

जहाँ भावना की उत्कटता हो, वहाँ स्वर, ध्वनि, भाषा और शब्द; सभी गौण हो जाते हैं, हृदय अपने भगवान् से अपनी विशिष्ट भाषा में संबंध जोड़ लेता है। परंतु जहाँ लोग एक सार्वजनिक, नित्य या नैमित्तिक विधि के रूप में सामुदायिक प्रार्थना करते हों और उस प्रार्थना के श्लोक, पद्य तथा मंत्र निश्चित हों, तो प्रार्थना के समय स्वर, ध्वनि, भाषा और शब्द सामुदायिक एकाग्रता के लिए जितने अनुकूल होंगे, उतना ही उस प्रार्थना में पवित्र और गंभीर वातावरण रहेगा।

करीब २५ साल से लगभग सारे देश में घूमने का सौभाग्य हमें मिला है। लेकिन देखा यह है कि 'वंदे मातरम्', 'जन-गण-मन' और झंडा-गीत भी फीसदी अस्सी सभाओं में गलत गाया जाता है! उन गीतों की भाषा, उच्चारण, तर्ज़ और राग-सभी में गायक अपनी-अपनी स्वतंत्र प्रतिभा का प्रयोग करते हैं। नतीजा यह है कि प्रायः हर जगह उन गीतों को पहचान लेना मुश्किल हो जाता है। जरूरत इस बात की है कि हर जगह की पाठशाला में कम-से-कम एक व्यक्ति तो इन राष्ट्रगीतों के सही शब्द, उन शब्दों के सही उच्चारण और सही अर्थ जान लेना अपना कर्तव्य माने। 'वंदे मातरम्' और 'जनगणमन', ये दोनों रत्न हमें रत्न-प्रसवा बंगला भाषा से मिले हैं, इसलिए और भी आस्थापूर्वक उन गीतों के शब्दों को और अर्थों को जान लेना आवश्यक है।

'ईशावास्य' का संस्कृत श्लोक 'यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र', हिन्दी ईशावास्य और 'स्थित-प्रज्ञ' के हिंदी श्लोक, इन सबकी जो दुर्दशा होती है, वह उत्कट भक्तिपूर्ण हृदय की एकाग्रता के लिए भी बहुत अनुकूल नहीं है। अंग्रेजी कविता का अगर कोई गलत उच्चारण करे, तो लोग उसका कविता पढ़ना हराम कर देंगे। लेकिन हमारी जो नित्य की प्रार्थना है, उसके विषय में हमारी वृत्ति नितांत अनास्था की है। पूज्य किशोरलाल भाई ने कई बार अपनी करुणाप्रखर शैली में इस तरफ हमारा ध्यान दिलाया है। हम केवल उनके उपदेशों का स्मरण दिलाते हैं।

www.vinoba.in

हर प्रार्थना के अंत में एक प्रमाद-क्षमापन का श्लोक पुरानी परिपाटी में प्रार्थना का अंग ही बन गया है :

यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यताम् देव प्रसीद परमेश्वर ॥

–हे ईश्वर (अनजाने) मुझसे प्रार्थना में कोई अक्षर, पद या मात्रा छूट गयी हो, या गलत पढ़ी गयी हो, तो उसके लिए तू मुझे क्षमा कर और मुझसे प्रसन्न हो।

हमें अपनी प्रार्थनाओं में इस प्राचीन पवित्र भावना से काम लेना चाहिए।

काशी, ता. १८-८-'५७ —दादा धर्माधिकारी

नवसमाज के निर्माण में ग्रामदान-रूपी लोहचुंबक !

(एस. एम. जोशी)

मैं स्वयं एक भूदानी हूँ और भूदान की दृष्टि मुझे बहुत काम की लगती है। यह बड़ा मौलिक कार्य है और अब तो इसने ग्रामदान का रूप धारण कर लिया है, अतः कोई शंका भी अब नहीं रही है। पर मुझे यह काम क्यों बहुत पसंद है, इसे मैं यहाँ ज़रा स्पष्ट करना चाहता हूँ।

हम सब लोग कहते हैं कि हमें नये समाज का निर्माण करना है और पुराना समाज हमें नहीं चाहिए, क्योंकि उसमें ऊँच-नीच भाव समाज के हरेक अंग में बुरी तरह भर गया है, इस समाज-देह को त्रिदोष ही हो गया है, इसलिए अब यह किसी अच्छे काम के लायक नहीं रहा। शास्त्र कहता है, ऐसी अवस्था में आत्मा को नया शरीर धारण करना चाहिए। भूदान की भी यही धारणा है। इसलिए नयी समाज-रचना के कार्य में शास्त्र और भावना, दोनों अनुकूल हैं।

लेकिन इस नये समाज-शरीर में कौनसी आत्मा होगी ? मुझे लगता है, मानव-प्रेम और जीवन-निष्ठा ही इस नवदेह की आत्मा है, जो हमें कहती है कि समाज-शरीर में कोई विषमता नहीं चाहिए, आर्थिक और सामाजिक समता ही चाहिए, ताकि दुःख-दैन्य आदि का पारिपत्य हो।

नया शेड्यूल्ड क्लास !

लेकिन यह हो कैसे ? इसके लिए मुल्क में आज एक पंचवार्षिक योजना चल रही है, जिसका लक्ष्य भी नवसमाज-निर्माण है। पर नये समाज-पुरुष के जन्मकाल में जागरूक रहने की बहुत आवश्यकता होती है। इस नयी पंचवार्षिक योजना में से समाज का जो ढाँचा तैयार हो रहा है, उसमें कल-कारखाने, नौकरियाँ, नहरें, विशेषज्ञ, सलाहकार, हिसाब-निरीक्षक आदि वे ही की वे ही चीजें हैं। प्रचलित अन्याय दूर करने के संबंध में भी कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। विनोबा ने इसी अन्याय के ऊपर और योजना की इन संभावनाओं पर अचूक अंगुलीनिर्देश किया है। शरीर के प्रत्येक अवयव में रक्ताभिसरण होना चाहिए। सर्वत्र खून पहुँचना ही चाहिए। वह पहुँचता भी है। इसीलिए पैरों में जरा काँटा चुभा कि आँखों से पानी निकल पड़ता है। शरीर का और अवयवों का ऐसा अविभाज्य संबंध होता है। संपूर्ण समाज की सारी इकाइयों का संबंध भी नयी योजना में ऐसा ही होना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य से ऐसी बात नहीं हो रही है, बल्कि जिनके लिए प्लानिंग होना चाहिए, ऐसे बहुत बड़े समूह को इस योजना से अलग ही रखा गया है। ग्रामीण जनता का, खास कर बेजमीन लोगों का इस योजना से ऐसा कोई संबंध नहीं है। योजना के लिए देहातों को टैक्स तो देना ही पड़ता है। महँगाई का बोझ उन पर पड़ता है। राष्ट्र का प्रमुख उत्पादन देहातों में से ही प्राप्त होता है। लेकिन फिर भी उनका ताल्लुक योजना के साथ नाम मात्र का ही है। उन्हें अछूत के समान ही दूर रखा गया है। श्रम वे करें, मुनाफा हम लें, यह तो बड़ा अन्याय है। लेकिन यह आज चल रहा है, क्योंकि देहाती जनता में Nuisance Value (उपद्रव करने की ताकत) नहीं है, न योजना में बाधा पहुँचाने की कोई सामर्थ्य उनमें है। जिनमें यह सामर्थ्य है, उनकी बात फौरन सुनी जाती है। बंदरगाह, पोस्ट-तार आदि के कर्मचारी हड़ताल की धमकी देते हैं, तो योजना में बाधा पहुँचेगी, इस डर से सरकार उन्हें खुश रखने की कोशिश करती है और पं० नेहरू उन लोगों को बुला कर बात करते हैं। लेकिन किसान न हड़ताल कर सकता है और न जमीन पड़ती रख सकता है। अगर उसने जमीन पड़ती रखी, तो उसके लिए कानून में सजा है ! लेकिन हानि का जरा डर होते ही जो अपना कल-कारखाना बंद कर देता है और हजारों को बेकार कर देता है, उसके लिए कानून में कोई सजा नहीं ! 'पड़तल' नहीं पड़ती, पुसाती नहीं, इसलिए सोलापुर की एक मिल बंद है, पर जिन मिल-मालिकों को यह पड़तल पड़ती है, वे उनके नुकसान की पूर्ति क्यों न करें ? हजारों मजदूरों को बेकार बनाने की सुविधा तो उन्हें हो और अपनी सारी साधन-सामग्री भी वे निकम्मी बनाये रखें, तो भी उन्हें तो कोई सजा नहीं, लेकिन किसान को किसानी बंद करते ही सजा हो, यह जबरदस्त अन्याय है। पर यह आज चल रहा है, क्योंकि उनकी आवाज नहीं उठती, न दिल्ली तक वह पहुँच ही पाती है। सरकार की नयी योजना में से उपेक्षितों का यह नया वर्ग पैदा हो रहा है, साथ ही शोषकों का भी एक नया वर्ग खड़ा हो रहा है। नयी समाज-रचना का यह नया "शेड्युल्ड कास्ट"– ग्रामीण भूमिहीन मजदूर हैं और उन्हें चूसने का प्रधान साधन है–यह नयी योजना।

यह स्थिति अगर टालनी हो, तो हर शख्स का योजना के साथ निकटता का संबंध आना चाहिए। पर आज यह संभव नहीं हो पा रहा है। गाँव का उससे संबंध हो और गाँव में प्रत्येक का प्रत्येक से पारिवारिक संबंध हो, इसके लिए गाँव को ही सर्वप्रथम एक-परिवार बनना होगा। इस नये उपेक्षित वर्ग को हम तभी आश्वासित कर सकेंगे। परसों कोल्हापुर की तरफ़ एक भुखमरी की घटना हुई। प्रश्न यह है कि ग्रामीणों ने उसे मरने कैसे दिया ? उसके लिए कुछ किया क्यों नहीं ? घर का कोई सदस्य मर जाता है, तो उसकी खबर घरवालों को क्या अखबारों से मिलती है ? लेकिन आज यही हो रहा है, क्योंकि गाँव में कुटुंब-भावना नहीं है, परिवार-भावना नहीं है। विनोबा ठीक यही कह रहे हैं कि गाँव को परिवार बनाओ और योजना को Magnetic Field (लोहचुंबक कक्षा) का रूप दो। मॅग्नेटिक फील्ड के क्षेत्र में आने वाले प्रत्येक लोहकण पर मैंग्नेट (लोहचुंबक) का जैसे परिणाम होता है, वैसे ही ग्रामदान से सब पर होगा।

त्रिविध परिणाम

यह बन सके और ग्राम-परिवार कायम हो सके, इसके लिए सर्वप्रथम ग्रामदान होना चाहिए। ग्रामदान हुआ कि पारस्परिक आत्मीयता की हवा बन जायगी और गाँव एक मॅग्नेटिक फील्ड (लोहचुंबक क्षेत्र) बन सकेगा। परिणामतः नये रूप में निर्माण होने वाली तानाशाही, नौकरशाही और पूँजीशाही रुक सकेगी। इसीलिए ग्रामदान को मैं बहुत महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। राष्ट्र की प्रगति ग्रामीण प्रगति पर निर्भर है और ग्रामीण प्रगति खेती और किसानों पर निर्भर है। बड़े कल-कारखानों से देश की प्रगति निकट भविष्य में संभव नहीं है और जो उसे संभव मानता है, वह गलत कहता है, ऐसा मैं कहूँगा !

आज तो नयी पंचवार्षिक योजना के लिए पर्याप्त पैसा तक नहीं है। महँगाई बढ़ ही रही है। परिणामतः समाज के महत्त्वपूर्ण अंग हड़ताल करते हैं और हड़ताल हुई कि उनकी वेतन-वृद्धि होती है। वेतन-वृद्धि हुई कि फिर टैक्स-वृद्धि होती है और उसका सारा बोझ अप्रत्यक्ष रूप से गरीब किसानों पर पड़ता है। ऐसी हालत में सारे मुल्क का औद्योगीकरण (इंडस्ट्रीलाइजेशन) असंभव है। इसलिए एक ही रास्ता बच जाता है–देहात की प्रगति का, जहाँ आज आत्यंतिक दरिद्रता है। अभी एक भाई ने लिखा कि इधर लोग केले के तने के भीतर का गूदा पका-खाकर ज्यों-त्यों जी रहे हैं ! ऐसी हालत को अगर रोकना हो, तो एक गाँव-परिवार बन सके, ऐसी स्थिति लानी होगी, तभी इस नयी पूँजीशाही का प्रतिकार किया जा सकेगा। गरीबों की आवाज ताकतवर बने, ऐसी योजना हमको करनी होगी–जो ग्रामदान से सहज संभव है। बेदखली पर भी ग्रामदान अच्छा इलाज है। इसलिए गाँव-गाँव में ग्रामदान का संदेश भिद जाना चाहिए, अन्यथा उपेक्षितों का एक नया वर्ग खड़ा करने की गलती हम करेंगे !

(मूल मराठी, 'भूदान-यज्ञ' से)

भूदान से भी ग्रामदान की कल्पना मुझे अधिक जँची है और इसीलिए इस काम की ओर मैं खिंचा। पर ग्रामदानी गाँवों के लिए कुछ ठोस कार्य करना चाहिए। आगामी दस सालों में सर्वत्र बड़े परिवर्तन होने जा रहे हैं। ऐसी हालत में ग्रामदानी गाँवों में अगर कुछ निश्चित सुधार हम नहीं कर सकें, तो ग्रामदान के लाभों से हम वंचित होंगे और देश में जो एक वैचारिक क्रांति ग्रामदान के रूप में हो रही है, वह भी व्यर्थ होगी।

गाँव के कार्यकर्ताओं की शक्ति यथाक्रम बढ़नी चाहिए। ग्रामदानी गाँवों को यथाशक्य बाहर की आर्थिक मदद भी मिलनी चाहिए। ग्रामदानी गाँव के लोग ग्रामदान के मूल विचार से दूर न निकल जायँ और उनकी श्रद्धा को हानि न पहुँचे, ऐसी ही हमारी दृष्टि होनी चाहिए। —धनंजयराव गाड़गीळ

www.vinoba.in

पंचामृत

भूदान से सार्वजनिक उत्साह की लहर

इसी बीच में 'भूदान'ने भारत में एक शक्ति का रूप ले लिया। जमीन का फिर से बँटवारा कराने में उसे जो कामयाबी हुई हो, उससे भी कहीं ज्यादह अहमियत उसे मिल गयी है। 'दान' ने एक नयी धार्मिक निष्ठा और पवित्र युद्ध का रूप ले लिया। जिनके पास जमीन के अलावा गरीबों को देने के लिए दूसरी तरह की जायदाद थी, उनके लिए संपत्तिदान निकाला गया। भावे के आंदोलन का जो जादू की तरह असर हुआ, उससे भावाविष्ट होकर, खुशहाल महिलाएँ, भावे की प्रार्थना-सभाओं में भेंट चढ़ाने के लिए कीमती साड़ियों की थप्पियाँ लाने लगीं और अपने जेवर तथा जवाहिरात उतारने लगीं। आखिरी कदम था, 'श्रमदान' (बुद्धिदान ?) या 'मानसिक दान,' इस 'दान' ने आंदोलन में उन लोगों को भी दाखिल कराया, जो अपनी बौद्धिक संपत्ति में से ही कुछ दे सकते थे।

आजाद भारत अपने पैरों पर खड़े होने की और अपने आपको ऊपर उठाने की जो जोरदार कोशिश कर रहा था, उसमें एक बात की कमी थी, जिसे भूदान ने पूरा किया। वह कमी थी सार्वजनिक उत्साह की। कई शताब्दियों तक भारत के नागरिक को दैववाद की निष्क्रियता की आदत हो गयी थी। उसका शासन हमेशा ऊपर से होता रहा। अवाम की हालत में तरक्की करने के लिए जो उपाय जरूरी हों, उनको काम में लाने के लिए वह अपने से ऊपर वालों का इन्तजार करता रहता था। वह अपने बाप-दादों के तरीकों में ही पला था और नये तरीकों की खोज तब तक नहीं करता था, जब तक कि कोई दूसरा उन नये तरीकों को आजमा कर उनके फायदे साबित न कर दे। और आखिरी बात, उसका धर्म उसे यह सिखाता था कि इस जिन्दगी में कुछ भी क्यों न होता रहे, उसकी बहुत कीमत नहीं है।

गांधी के राष्ट्रीय आंदोलन ने जिस प्रकार सत्याग्रह के द्वारा भारतीय लोकमानस को प्रदीप्त किया था, उसी तरह आध्यात्मिकता का आवाहन कर भूदान ने भी लोकमानस प्रदीप्त किया। राजनैतिक क्षेत्र में जिन रहस्यमय शक्तियों के सामने अंग्रेज ठहर नहीं सके, उन्हीं शक्तियों को आर्थिक उत्थान के लिए एकत्रित करने का यह प्रयास है।

बहुत से लोगों ने कहा है कि भूदान एक ऐसा अनोखा दृश्य है, जो भारत में ही घटित हो सकता है। यह भी उतना ही वास्तविक हो सकता है कि केवल ऐसा ही रहस्यमय समाधान, जिसकी पूरी जानकारी और प्रयोग सर्वप्रथम गांधीजी ने और अब विनोबा ने किया, भारत की जनता को व्यावहारिक फल के लिए अग्रसर करने की क्षमता रखता है।

('ऐज़ आई सी इंडिया' से) — रॉबर्ट ट्रम्बेल

ग्राम-स्वराज कैसा हो ?

ग्राम-स्वराज के संबंध में मेरा विचार यह है कि इसे पूर्ण गणतंत्रात्मक होना चाहिए, जो अपनी मुख्य आवश्यकताओं के लिए अपने पड़ोसियों पर आश्रित न रहें; फिर भी अन्य वस्तुओं के लिए, जहाँ निर्भरता आवश्यक हो, यह आश्रित रहे। इस प्रकार प्रत्येक ग्राम का पहला विषय (कार्य) अपने खाने के लिए अन्न तथा वस्त्र के लिए रूई उत्पन्न करना है। गाँव में पशुओं के लिए संरक्षित चारा तथा बालिग व्यक्तियों और बच्चों के लिए मनोरंजन और खेल के मैदान होने चाहिए। गाँव अपने यहाँ एक नाट्यशाला, स्कूल और सार्वजनिक भवन की व्यवस्था करेगा। ·····शिक्षा अन्तिम बुनियादी पाठ्यक्रम तक अनिवार्य रहेगी। प्रत्येक कार्य यथासम्भव सहकारिता के आधार पर संचालित होगा।

अहिंसा अपने सत्याग्रह और असहयोग के साधनों के साथ ग्रामशासन का आधार होगी। गाँव के बालिग व्यक्तियों, स्त्री और पुरुषों द्वारा प्रति वर्ष निर्वाचित पाँच व्यक्तियों की, जिनके लिए न्यूनतम योग्यताएँ निर्धारित होंगी, एक पंचायत होगी। आज भी कोई गाँव बिना विशेष हस्तक्षेप के—यहाँ तक कि वर्तमान सरकार द्वारा भी ऐसा न होगा, जिसका गाँव से एकमात्र मुख्य संबंध मालगुजारी वसूल करना है—उक्त प्रकार का गणतंत्र बन सकता है।

(क्लेयर ऐंड हैरिस वीफोर्ड की "इंडिया एफायर" पुस्तक से) —महात्मा गांधी

राज्य-विश्वविद्यालयों के प्राचीन संबंध फिर कायम हों !

भारत की आधुनिक शिक्षा और संस्कृति के उद्धार के लिए हम कैसे भारतीय आदर्शों को उन पर लागू करें यह ऐसा प्रश्न है, जिसे केवल भारतीय विश्व-विद्यालय हल कर सकते हैं। किंतु इसे हल करने के पूर्व (नहीं, यह कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व) राज्य और विश्वविद्यालयों के बीच प्राचीन संबंध पुनः स्थापित किये जाने चाहिए। शिक्षा पुनः प्राचीन आदर्शों से प्रेरित होनी चाहिए तथा इन्हें नये रूप में रखा जाय—इस उद्देश्य से कि ये नये रूप भारत के जीवन की अभिव्यक्ति—न कि उसे सीमित करने वाली तंग सदरी—हों, शिक्षा और संस्कृति को प्राचीन स्वतंत्रता अवश्य मिलनी चाहिए। सरकार को शैक्षणिक और सांस्कृतिक संस्थाओं की सहायता के लिए उन्हें भौतिक साधनों—भूमिदान, भवन और अन्य आवश्यक सामान के लिए धन के अनुदान—की व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे ये राष्ट्र को राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य-संचालन के लिए उच्च, चरित्रवान्, विद्वान् और निपुण व्यक्तियों—पुरुषों और महिलाओं—की अमूल्य पूँजी दे सकें। राष्ट्र द्वारा शिक्षा के लिए दिया गया धन, दान नहीं, बल्कि लगायी गयी पूँजी है। इससे राष्ट्र को अधिक सूद ही नहीं, बल्कि व्यक्ति को भी अधिकार और सुख प्राप्त होता है।

विद्वान् व्यक्ति साहित्य-रचना करते हैं, जिससे दुनिया की निगाहों में राष्ट्र उठता है। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि विश्व भर में ज्ञान का प्रसार होता है। विद्वान् ऐसे साहित्य का प्रणयन करता है, जो केवल समकालीन व्यक्तियों को ही नहीं, बल्कि भावी पीढ़ियों को ऊँचा उठाता और अनुप्राणित करता है। विज्ञान ऐसे आविष्कार करता है, जिनसे मनुष्य का ज्ञान बढ़ता है और प्राकृतिक शक्तियों के ऊपर उसके आधिपत्य की वृद्धि होती है। यदि मानव केवल सन्मार्ग पर चले, तो इन आविष्कारों से उसकी उन्नति कायम रहेगी तथा मानव-जीवन और सुख की वृद्धि होगी। अपने आध्यात्मिक, बौद्धिक, भावयुक्त तथा शारीरिक गुणों के शिक्षण और संस्कार से मनुष्य राक्षस से ज्ञानी और महात्मा बनाया जा सकता है; उसकी दरिद्रता मिटायी जा सकती है; समाज असभ्य के बदले भातृभावनायुक्त बनाया जा सकता है; अपराध से, जो अज्ञान के परिणामस्वरूप है, मुक्ति प्राप्त की जा सकती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय और सामाजिक शांति, युद्ध और वर्ग-संघर्ष का स्थान ग्रहण कर सकती है।

प्राचीन शिक्षा-पद्धति का स्वरूप

प्राचीन भारतीय पद्धति में शिक्षा और संस्कृति स्वनियंत्रित थे। यद्यपि राज्य—संघटित राष्ट्र—उनसे लाभान्वित होता था और उनसे इसे प्रतिष्ठा, धर्म, नीति, प्रभाव और परिणामतः निपुणता प्राप्त होती थी, तथापि इसकी सरकार के व्यवस्थापिका और शासन-विभाग उन पर कोई नियंत्रण नहीं रखते थे और उनके प्रबन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे। नरेशों ने विश्वविद्यालय बनवाये और उन्हें संपत्ति दी, किन्तु उन पर अपने किसी अधिकार का दावा नहीं किया। राजा विश्व-विद्यालय के दीक्षान्त-समारोह में जा सकता था, किन्तु कोई उसका स्वागत करने के लिए नहीं उठेगा और वह अन्य दर्शकों की भाँति अपना स्थान ग्रहण करेगा। किंतु विश्वविद्यालय के कुलपति—'पूज्यों के पूज्य'—के प्रवेश करते ही सभी उनको ओर अभिमुख होकर खड़े हो जाते थे तथा मौन होकर उनके वचन की प्रतीक्षा करते थे। विश्वविद्यालय विद्यामन्दिर था और विद्वान ही इसके पुरोहित थे। जब विद्वान् नरेश के यहाँ जाता था, जब बुद्धिमान् न्यायालय में प्रवेश करता था, तब श्रीकृष्ण ऐसे महानुभाव भी अपने सिंहासन से उतर जाते थे और उस ऋषि के चरणों में प्रणत होते थे।

आधुनिक पद्धति में शिक्षा सरकारी विभाग के नियन्त्रण में है; व्यवस्थापिका-सभा इसके लिए कानून बनाती है; शासन विभाग अपने संचालक या मंत्री नियुक्त करती है, जो इसके वास्तविक स्वामी हैं; यह (शासन-विभाग) अपने स्कूलों और कॉलेजों में अपने निरीक्षक (इन्स्पेक्टर) भेजता है तथा शिक्षकों को कठिन बन्धन में, जिसे 'निपुणता' की झूठी संज्ञा दी जाती है, रखता है।

('इंडियन् आइडियल्स' से) —एनी बेसेंट

---

www.vinoba.in

विनोबा-सुखलालजी चर्चा

विनोबा—"हम लोग पहले कब मिले थे ?"

प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलालजी—"लगभग ८ वर्ष पहले आप जब साबरमती आश्रम आये थे, तब मिले थे और बैठ कर बातें की थीं।"

विनोबा—"आपकी उम्र कितनी हुई ?"

पंडितजी—"उम्र के बारे में जब मानसिक दृष्टि से मैं विचार करता हूँ, तो लगता है कि अन्तःशरीर में जो उम्र हुई, वही सच्ची उम्र है। इससे शारीरिक वृद्धावस्था का बहुत असर मन पर नहीं पड़ता और कुछ-कुछ यौवन की प्रसन्नता का अनुभव होता है !"

विनोबा—"विद्याध्ययन के सम्बन्ध में आपका क्या अनुभव है ?"

पंडितजी—"यह वस्तु सापेक्ष है। विद्यार्थी न हों, तो विद्याजीवन चल ही नहीं सकता। मेरे-जैसे के लिए तो विद्यार्थी ही जीवन का आधार हैं। ये जितना ज्ञान प्राप्त करेंगे, उतना ही विद्याजीवी व्यक्ति के लिए संतोष की बात है। इस प्रकार विद्यार्थी और अध्यापक का विद्या-संबंध अविभाज्य है। कम से कम मेरे जीवन का तो यही तथ्य है। दूसरे का आधार न मिले, तो चल ही नहीं सकता। आधार का उपयोग करना और उस पर से अपना मूल्यांकन करना; इस प्रकार मैं प्रत्येक वस्तु को अपने जीवन के चारों तरफ संगठित करता हूँ। इस दृष्टि से मेरा अध्ययन-अध्यापन का अनुभव अत्यन्त मधुर है।"

"गुजरात में भी ग्रामदान शुरू हो गया है"—विनोबाजी ने कहा,

पंडितजी कहते गये—"हाँ, गुजरात में जगह-जगह भूदान-विचार की प्रगति हो रही है और ग्रामदान भी होने लगा है। उसके जो समाचार मुझे मिलते हैं, उनके अनुसार कहूँ तो कार्यकर्ता-समुदाय में, लोग समझते हैं उस अनुपात में, विकास एकदम नहीं होता। इसमें सातत्य और प्रयत्न की विशेष जरूरत तो होती ही है।

भूदान की मौलिक भूमिका

"गुजरात में कार्यकर्ताओं की पुरानी पीढ़ी के साथ नयी पीढ़ी भी आ रही है, जिस तरह बापू १९१४-१५ में आये, तब काँग्रेस में नयी पीढ़ी का निर्माण हुआ। स्वराज्य मिलने के बाद उत्साह का दौर मन्द पड़ रहा था, अपने-अपने क्षेत्र में लोग ज्यादातर सरकार की टीका ही करते थे। उस समय भूदान का विचार सामने आया। इससे नयी पीढ़ी को चेतना मिली, बुद्धि-शक्ति और कर्तृत्व के लिए क्षेत्र मिल गया। पुरानी पीढ़ी को भी कुछ चाहिए था ही। अगर यह नया विचार उसके सामने नहीं आया होता, तो वे भी क्या करते, यह कहना कठिन है। इस प्रकार पुरानी पीढ़ी के अमुक वर्ग के साथ उत्साही और कार्य चाहने वाली नयी पीढ़ी के लोग भी जुड़ गये। गंगा में जब नया प्रवाह आता है, तो पुराने पानी के साथ वह मिल जाता है और नया-पुराना पानी मिल कर एक-सा प्रवाह हो जाता है। इसी तरह मैं आज भूदान-कार्य करने वालों को देखता हूँ। भूदान का कार्य नया है। इसमें वे लोग ही आवेंगे और टिक कर काम कर सकेंगे, जिनमें मानसिक स्वस्थता और धैर्य है। गुजरात में जो स्थिति है, वही लगभग सारे प्रांतों में कही जा सकती है।

"तात्त्विक विचार भी लोगों को अपील करता है—स्पर्श करता है। भूदान की मौलिक भूमिका यानी अहिंसा-अपरिग्रह के विचार को व्यापक बनाने की भूमिका तो ऐसी निश्चित है कि इसे कोई हटा नहीं सकता।"

"मैं देख रहा हूँ कि भूदान में अब कुछ दूसरे लोग भी आने लगे हैं।"—विनोबाजी ने कहा।

पंडितजी—"आजकल स्कूल-कॉलेजों में से जो विद्यार्थी निकल रहे हैं, वे ज्यादातर छिछले होते हैं। लोग आज मेहनत नहीं करना चाहते। किसी तरह परीक्षा पास कर लेना ही उनका ध्येय होता है। गंभीर साहित्य का वाचन-मनन एक विरल बात हो गयी है। फिर भी जो जिज्ञासु वर्ग है, वह आपका गंभीर साहित्य पढ़ता है। और उसमें उसको विचारों का अपेक्षित भोजन मिलता है।

तर्क के सत् और असत् दोनों पक्ष होते हैं अर्थात् तर्क 'कु' और 'सु' दोनों प्रकार का होता है। कुतर्क की अक्षौहिणी सेना बहुत बड़ी होती है। उसकी अपेक्षा सुतर्क की सेना छोटी होती है। पर सच्चा बल उसमें ही होता है।

"नयी पीढ़ी और तरुण वर्ग के लिए इस प्रकार के किसी प्रेरक मार्ग की आवश्यकता थी ही। पंजाब के हत्याकांड के बाद काँग्रेस की तरफ से एक जाँच-समिति कायम की गयी थी। शायद उसकी रिपोर्ट तैयार करने के लिए बापूजी बनारस आये थे। वहाँ से अहमदाबाद गये। उस समय उनकी तबीयत कुछ खराब थी। मैंने सहज भाव से भक्तिवश उनसे कहा—"एक महीना पूरा विश्राम कीजिए।" बापूजी ने फौरन कहा—"क्या इस शरीर को अजगर की तरह पड़ा रखूँ ?" इतने में कालेज के कुछ विद्यार्थी आ गये। स्वराज की भावना हवा में गूँजती थी। उन्होंने बापूजी से पूछा—"हमारा क्या कर्तव्य है ?" बापूजी ने उत्तर दिया—मैं तो निर्दोष जीवन जीने का निर्दोष मार्ग बता रहा हूँ।

"मुझे लगता है कि आज भूदान का मार्ग वैसा ही निर्दोष और उपयोगी मार्ग है।"

".....पिछले चार-पाँच वर्षों में उत्साहपूर्ण परिवर्तन दिखायी पड़ रहा है। इसके पक्ष में बौद्धिक संस्कार भी अमुक वर्ग में है, यह तो दीखता है, परन्तु अन्तर में प्रस्फुटित जो प्रेरणा मानस को जाग्रत करती है, उसीका वास्तविक महत्त्व होता है।..."

अन्त में विनोबाजी ने 'आपको भक्तिभावपूर्वक प्रणाम' कह कर विदा ली।

('तरुण') —— —प्रतापराय टोलिया

त्याग ही भारत का आदर्श

हम सभी भारत के पतन के विषय में बहुत कुछ सुनते हैं। एक समय ऐसा था कि मैं भी इसमें विश्वास करता था, किन्तु आज अनुभव के बल पर तथा आँखों के सामने बाधक (*मन की*) पूर्वभावनाओं की तस्वीर और विशेषकर उन दूसरे देशों का अतिरंजित चित्र न होने के कारण, जिनके प्रत्यक्ष सम्पर्क से अब उनका चित्र उचित रूप-रंग में दृष्टिगोचर है, मैं अति विनम्र भाव से यह स्वीकार करता हूँ कि मैं गलती पर था। आर्यों की धन्य भूमि ! तेरा कभी पतन नहीं हुआ। राजदंड तोड़ या फेंक दिये गये, शक्ति का गेंद इस हाथ से उस हाथ में घूमता रहा, किन्तु भारत में न्यायालयों और नरेशों ने सदा थोड़े व्यक्तियों को ही प्रभावित किया है। विशाल जनसमूह—बड़े से लेकर छोटे व्यक्तियों तक—अपने निश्चित मार्ग पर चलने के लिए मुक्त छोड़ दिया गया; राष्ट्रीय जीवन की धारा कभी मन्द और अर्धचेतन तथा कभी प्रबल और जाग्रत रूप से प्रवाहित होती रही। मैं बीसियों जाज्वल्यमान शताब्दियों की, अभंग शोभायात्रा (जुलूस) के समक्ष, जिसमें यहाँ-वहाँ की धूमिल कड़ी केवल आगे की कड़ी को अधिक प्रकाशमान बनाने के लिए है, श्रद्धावनत हूँ। उसमें मेरी मातृभूमि अपने गौरवयुक्त पद रखती हुई अपने उस गौरवपूर्ण भाग्य का—पाशविक मनुष्य को देव-मनुष्य में परिवर्तन—निर्माण करने के लिए, जिसे पृथ्वी या स्वर्ग की कोई शक्ति नहीं रोक सकती, विचरण कर रही है।

हाँ, मेरे बन्धुओ ! गौरवपूर्ण भाग्य का निर्माण, क्योंकि उपनिषद् काल से ही हमने विश्व को यह चुनौती दी है कि "अमरत्व धन द्वारा नहीं, संतति द्वारा नहीं, अपितु त्याग से ही प्राप्त किया जा सकता है।" एक के बाद दूसरी जातियों ने इस चुनौती को स्वीकार किया तथा वासनाओं के आधार पर इस विश्व-पहेली को सुलझाने का भरसक प्रयत्न किया। ये अतीत में अपने इस प्रयत्न में विफल हो चुकी हैं—प्राचीन जातियाँ दुष्टता और दुःख के—जो शक्ति और धन की वासना के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं, बोझ से नष्ट हो गयीं और नयी जातियाँ पतनोन्मुख हैं। अभी इस प्रश्न का समाधान होना है कि शान्ति अथवा युद्ध, धैर्य अथवा असहिष्णुता, अच्छाई, सद्भाव अथवा चातुर्य, सांसारिकता अथवा आध्यात्मिकता, इनमें कौन टिका रहेगा। हम युगों पूर्व इस प्रश्न को हल कर चुके हैं और हम सुदिन या दुर्दिन में इस सिद्धान्त को अपना रहे हैं तथा अन्त काल तक इसको अपनाये रहने का विचार रखते हैं। हमारा समाधान है असांसारिकता, त्याग।

('इंडिया' से) —— —स्वामी विवेकानन्द

कृषि-उन्नति क्यों रुकी ?

ग्राम-पद्धति "खेती तथा दस्तकारी व्यवसायों के घरेलू (घनिष्ठ) मेल" के आधार पर बनायी गयी थी। "हाथकरघा और चरखा प्राचीन भारतीय समाज के ढाँचे के प्रधान आधार थे।" किन्तु "बिना अधिकार के प्रवेश करने वाला यह ब्रिटेन था, जिसने भारतीय हाथ-करघे को तोड़ डाला तथा चरखे को नष्ट कर दिया।" इस प्रकार से ब्रिटेन ने "एशिया में सबसे बड़ी और सचमुच एकमात्र सामाजिक क्रान्ति की, जो अभूतपूर्व थी !" इस क्रान्ति ने न केवल शिल्पकारी के पुराने नगरों को नष्ट कर डाला, जिससे उसकी आबादी को विवश होकर गाँवों में एकत्र होना पड़ा, बल्कि इसने गाँवों के आर्थिक जीवन का संतुलन ही समाप्त कर दिया। इससे खेती पर अत्यधिक दबाव पड़ा, जो अब तक भारी पैमाने पर जारी है। इसके साथ ही साथ किसानों से आवश्यक विस्तार और कार्य के लिए बिना उन्हें कोई प्रतिफल (बदला) दिये, निर्दयतापूर्वक अधिकतम मालगुजारी वसूल करने के कारण (सन् १८५०-५१ में वसूल १९, ३००,००० पौंड मालगुजारी में से केवल १,६६, ३९० पौंड यानी ८ प्रतिशत धन प्रतिफल-रूप में सार्वजनिक निर्माण पर खर्च किया गया था।) कृषि की उन्नति भी रुकी।

('इंडिया टुडे' से) —— —आर० पाम दत्त

www.vinoba.in

पटना जिले का जून-जुलाई का विवरण

कालड़ी-संमेलन से आते ही श्री अवध बाबू के नेतृत्व में ग्रामदान का पावन संदेश गाँव-गाँव पहुँचाने के लिए एक टोली निकली। बीस गाँवों में संदेश सुनाया। साहित्य-बिक्री की, भूदान-पत्रों के ग्राहक बनाये। शिकारपुर आश्रम में रचनात्मक गोष्ठी का दो दिन का आयोजन किया। भोजन की व्यवस्था गाँव-परिवारों में थी।

जिला सर्वोदय-कार्यालय, बख्तियारपुर में ५ और ६ जून को जिले के पूर्ण तथा आंशिक समय देकर कार्य करने वाले भूदान-सेवकों की बैठक हुई। सबने अपने गत वर्ष के जीवन का प्रकट सिंहावलोकन तथा परीक्षण किया। सबकी मान्यता रही कि जीवन अधिकाधिक विचारनिष्ठ एवं व्रतनिष्ठ बनाते जाना होगा। यद्यपि जिले में वितरण की कोई विशेष समस्या नहीं है, फिर भी जो भी भूमि बची है, उसे वितरण करने का एक प्रयास और करने का तय हुआ।

बिहार प्रां० द्वितीय सर्वोदय-संमेलन, पूसा रोड़ के लिए २१ जून को १५ मित्रों की टोली बख्तियारपुर से निकली। चार दिनों में ४० मील की दूरी तय करते हुए २० गाँवों से टोली गुजरी और ६ गाँवों में पड़ाव डाला।

'नायर' गाँव का प्रेरणादायी अनुभव

"नायर" दरभंगा जिले के ताजपुर थाने का गाँव है। हमारे पूसा रोड़ के मार्ग से यह दो मील पश्चिम हट कर था। २५ जून की संध्या को हम जिस गाँव में ठहरे, वहाँ इस बात की बहुत चर्चा सुनी कि नायर गाँव के ग्रामदान होने की तैयारी चल रही है। अतः हम लोगों को वहाँ की स्थिति के प्रत्यक्ष अवलोकन तथा अध्ययन करने का बहुत कौतूहल हुआ। सुबह ७ बजे हम पता लगाने नायर गाँव के एक भूदान-कार्यकर्ता श्री योगेन्द्र भाई के दालान पर भूदान-गीतों का उद्घोष करते हुए जा धमके। बहुत उत्साह एवं प्रेम के साथ उन्होंने स्वागत किया। परस्पर-परिचय के बाद हम लोगों ने उनसे सहयोग की माँग की। भरपूर सहयोग का आश्वासन देते हुए उन्होंने सार्वजनिक सभा का आयोजन संध्या में करने का अनुरोध किया। गाँव के अनेकों शिक्षित एवं उत्साही युवकों के साथ फेरी लगायी गयी। तत्पश्चात् पूरी टोली मकई के खेत की निरोनी के श्रम-कार्य में जुट पड़ी। दो घंटे में लगभग एक बीघा जमीन की निरौनी सम्पन्न हुई। श्रमदान का दृश्य अत्यन्त उत्साहवर्धक एवं प्रेरणादायी था। पचासों लोग श्रमदान का कार्य जोरों से कर रहे हैं, छोटे-छोटे ग्रामीण बालक निराये घास को इकट्ठा कर रहे हैं, आगे-आगे एक नवजवान भाई मधुर स्वर में भूदान का गीत गाता जा रहा है, वरुणदेव की कृपा वर्षा की हल्की बूँदों के रूप में श्रमदानी भाइयों का अभिषेक कर रही है, बीच-बीच में भूदान के भिन्न-भिन्न उद्घोष से वायुमण्डल गूँज उठता है, ऐसा सुन्दर वह दृश्य था। १० बजे श्रम-कार्य स्थगित हुआ और सभी भाई एक हाथ में निराये हुए घास को तथा दूसरे हाथ में खुरपी लिये पुनः ग्राम-फेरी को निकल पड़े।

गाँव के कई ऊँची शिक्षा-प्राप्त नवयुवक श्री नवलजी, एम. ए., श्री बैद्यनाथजी बी. ए. के छात्र, श्री योगेन्द्र भाई आदि-भूदान-विचार में दृढ़ श्रद्धा रखने वाले हैं। गाँव का शीघ्र ग्रामदान हो, इसके लिए ये लोग सतत प्रयत्नशील रहे हैं। गाँव काफी गाँव बड़ा है, जन-संख्या ३००० और कई टोलों में विभक्त है। कार्यकर्ता प्रत्येक टोले में बारी-बारी से सप्ताह में एक दिन सभा कर ग्रामीणों को ग्रामदान का विचार समझाने का कार्यक्रम चला रहे हैं। पर संपन्न व्यक्ति श्री रामाश्रय बाबू के टोले में सभा करने का साहस किसीने नहीं किया था। वे गाँव के सबसे धनी व्यक्ति हैं तथा गाँव पर उनकी बड़ी धाक है। वे पुराने काँग्रेसकर्मी भी हैं। १९२०-३० के जमाने में वे थाना काँग्रेस-कमेटी के अध्यक्ष तथा जिला काँग्रेस-कमिटी के सदस्य रह चुके हैं। ऐसा व्यक्ति ग्रामदान के विचार का विरोधी है। अतः इन युवकों को इस बात की बड़ी चिन्ता थी कि इन्हें कैसे अनुकूल बनाया जाय।

आज की गाँव-सभा उनके ही दालान पर, उनकी ही अध्यक्षता में हो रही थी। सर्वप्रथम श्री नवलजी ने भूदान तथा ग्रामदान के प्रति अपने आकर्षण की कथा तथा ग्राम-दान के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों की जानकारी प्रस्तुत की। तत्पश्चात् मैंने ग्रामदान के विचार पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला। सभा में गाँव के हर वर्ग के चुने हुए लोग सैकड़ों की संख्या में उपस्थित थे। मेरे व्याख्यान के बीच में कई लोग हमारी कुछ बातों का विरोध करना चाहते थे, किन्तु सभापतिजी ने सबको यह कहते हुए रोक दिया कि 'इनकी सभी बातों का उत्तर मैं दूँगा!' उनकी बातों से ऐसा प्रतीत होता था कि कि वे अंत में हमारी बातों का खण्डन मात्र करेंगे, किन्तु लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने अपने भाषण में भूदान तथा ग्रामदान के विचार का प्रबल समर्थन करते हुए यह घोषित किया कि अगले दो माह तक इन युवकों के प्रयत्नों की सचाई की परीक्षा ले लेने पर वे अपनी १०० बीघा जमीन ग्राम-समाज को समर्पित कर देंगे। सन् '५७ की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि यह वर्ष तीन तत्त्वों-साधु, सन्त और सत्य अर्थात् सन्त विनोबा, भूदान-ग्रामदान और अहिंसा के तरीके को लेकर आया है। इसकी सफलता में अटल विश्वास प्रकट करते हुए उन्होंने कहा कि जिस प्रकार महात्माजी को सफलता मिली, उसी प्रकार सन्त विनोबाजी का आन्दोलन भी सन् '५७ के अन्त तक अवश्य सफल होगा, ऐसा भाव उनके अन्तर में अनायास जग गया है। अध्यक्ष के व्याख्यान ने सभा में नवजीवन का संचार कर दिया। इसके बाद घंटा भर तक प्रार्थना, भजन, अहिंसक स्वराज्य का संक्षिप्त ब्यौरा तथा भूदान-गीत गाया गया। तत्पश्चात् श्री नवलजी ने गाँव के युवकों को इस कार्य में कूद पड़ने का आवाहन किया। सभा की समाप्ति "नायर गाँव का ग्रामदान, सफल करेंगे, सफल करेंगे" के गगनभेदी नारों के साथ हुई। इस गाँव के करीब १५ व्यक्ति पूसा रोड़-सम्मेलन में आये। श्री पूज्य जयप्रकाश बाबू से वे लोग मिले तथा वर्षा के बाद उस गाँव में उनका कार्यक्रम रखना निश्चित हुआ। श्री जयप्रकाश बाबू ने उन्हें अपना प्रयत्न जारी रखने तथा श्री रामाश्रय बाबू की परीक्षा में खरा उतरने की सलाह दी। साथ ही पूसा रोड़ खादी-भण्डार के व्यवस्थापक से मिल कर अपने गाँव में खादी के काम का प्रसार करने को भी कहा।

पूसा रोड़-संमेलन से नयी स्फूर्ति लेकर हम वापस लौटे। दो दिनों में ४० मील की यात्रा पूरी की। कुछ मित्रों ने जुलाई-अगस्त का अवकाश परिवार की सहायता के लिए कृषिकार्य में दिया। मैं अपने मित्रों के साथ श्री राममूर्तिजी की पदयात्रा-टोली में सम्मिलित हुआ। दो पड़ाव मुंगेर जिले में और दो पटना जिले में हुए थे। श्री राजवल्लभजी ने दो सप्ताह पालीगंज थाना के विभिन्न गाँवों के आदाताओं की स्थिति के अध्ययन करने में बिताया। एक वर्ष का समयदान देने वाले शिक्षक श्री कपिलदेव बाबू तथा श्री जयमंगलजी की टोली ने हिलसा और एकंगर सराय थाने में दो सप्ताह की पदयात्रा की। ११ गाँवों में १४ आदाताओं में भूमि वितरित की। फुलिया टोली और पटना सिटी अंबर परिश्रमालय में रचनात्मक गोष्ठी का आयोजन ता० २० व २१ जुलाई को किया। तीन-तीन व्यक्तियों की दो टोलियाँ बख्तियारपुर के फतुहा क्षेत्र और एकंगर सराय हिलसा क्षेत्र में अगस्त-सितंबर में पदयात्रा कर रही हैं।

—विद्यासागर (जिला-निवेदक)

भूदान-रूपी कल्याण-कार्य

बुढ़ापे के कारण पदयात्रा करने की ताकत अब मुझमें नहीं रही। पदयात्रा का अर्थ है, पैरों की और शब्द-विचारों की यात्रा! पद के माने ही शब्द! मैं आज सिर्फ़ भूदान-साहित्य ही पढ़ पाता हूँ। पर विनोबाजी से मेरा बहुत पुराना परिचय है। उनके इस आंदोलन में मैं क्या दे सकता हूँ? अपनी भावनाएँ ही मैं अर्पण कर सकता हूँ और इस भावदान के रूप में १०) का संपत्तिदान अर्पण कर रहा हूँ।

हमारे देश में विचारवान् लोग हैं, लेकिन विचार समझ लेने वाले लोग भी निर्माण होने चाहिए। अगर वैसा न हुआ, तो बहुत से दोष पैदा हो जायेंगे। भूदान का काम बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य के विकास में समाज का पूरा हविर्भाग होता है, इसलिए इस आंदोलन के द्वारा समाज को कुछ-कुछ देते रहने का काम हर व्यक्ति को करना है।

मेरा एक ही दल है और उसके केवल दो ही सदस्य हैं: एक मैं और दूसरा मेरा ईश्वर! मेरा ईश्वर मुझे कह रहा है कि भूदान का कार्य विश्व का कल्याण-कार्य है!

बंबई, २८-७-'५७

—सेनापति बापट

www.vinoba.in

केरल की क्रांति-यात्रा से–

(महादेवी)

गुरुवायूर केरल का एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। गांधीजी के हरिजन-मंदिर-प्रवेश आंदोलन के समय यह सारे हिंदुस्तान में प्रसिद्ध हो चुका था। एक दिन विनोबा का पड़ाव गुरुवायूर से करीब डेढ़ मील दूरी पर था। पड़ाव पर आते हुए मंदिर होकर आ सकते थे। लेकिन उसके लिए भी सवा मील चलना पड़ता। इसलिए कार्यक्रम रखने वालों ने विनोबा को सुझाया कि पड़ाव पर पहुँच कर बाद में मंदिर आयें। विनोबा ने मंजूर किया कि साढ़े दस बजे का तुलसी-रामायण-पाठ मंदिर में होगा। 'ऐडवांस पार्टी' में से कुछ लोग मंदिर गये। बाहर बड़े-बड़े अक्षरों में बोर्ड लगा था कि 'अहिंदु को प्रवेश नहीं।' इसकी जानकारी विनोबा को दी गयी। उन्होंने पूछा : "हमारी यात्रादल में अहिंदु हैं क्या? जवाब 'हाँ' में आया। उन्होंने कहा कि "दूसरे सब अहिंदुओं के लिए भी मंदिर खुला हो, तो ही मैं आऊँगा, ऐसा आग्रह मैं नहीं रखना चाहता, लेकिन जो मेरे साथ हैं और जो भक्तिभाव से मंदिर में आना भी चाहते हैं, उनको छोड़ कर जाना पसंद नहीं करता हूँ। जगन्नाथपुरी में एक फ्रेंच भक्त बहन साथ थीं। उन्हें प्रवेश नहीं मिला, इसलिए मैं भी मंदिर में नहीं गया। यहाँ पर यदि मेरे साथ के अहिंदु भाई को अपवाद के तौर पर भी जाने की इजाजत यदि मिले, तो मैं जाऊँगा।" तय हुआ कि संबंधित व्यक्ति से बातें की जायँ।

पड़ाव पर पहुँचने के बाद मंदिर के मैनेजर विनोबा को निमंत्रण देने के लिए आये। विनोबा ने नमस्कार करते हुए कहा कि "मुझे दुःख है कि मैं मंदिर में नहीं आ सकता हूँ। मैनेजर ने कहा कि "यह प्रथा चलती आयी है।" विनोबा ने कहा, "पहले हरिजनों को प्रवेश न देने की भी प्रथा चलती आयी थी। लेकिन लोकमत बदला, उन्हें प्रवेश मिला और उससे भगवान् का कोई नुकसान नहीं हुआ! सब धर्मवालों के लिए मंदिर के दरवाजे खुलने चाहिए। वे जब खुलेंगे, तब खुलेंगे, लेकिन तब तक मेरे जैसों के साथ के जो अहिंदु वहाँ जाना चाहते हैं, उन्हें प्रवेश मिलना चाहिये। उन्हें छोड़ कर मैं कैसे जा सकता हूँ? महाभारत में कहानी है कि युधिष्ठिर के साथ के कुत्ते को स्वर्ग में मनाही हुई, तो युधिष्ठिर ने वहाँ जाने से ही इन्कार किया। साथियों को छोड़ कर हम जाना नहीं चाहते। हमारे मन में भक्ति तो बहुत है, फिर भी हम यहीं से प्रणाम करते हैं।" मैनेजर ने कहा कि पहले यह बात मालूम होती, तो राजा झामोरिन (मंदिर के मुख्य मंत्री) से पूछ कर इजाजत ले रखते।" विनोबा ने कहा कि "मेरा भी कार्यक्रम पहले तय नहीं था।"

मैनेजर के आने के पहिले विनोबा का वेद का स्वाध्याय चल रहा था। टेबल पर वेद की किताब खुली हुई थी। उसकी ओर संकेत करते हुए बोले कि "आप देख रहे हैं कि मैं वेदाभ्यास कर रहा हूँ। राजा झामोरिन को आप लिखियेगा कि वेदाभ्यास करने वाले बाबा आये थे, अहिंदु सहयात्रियों को इजाजत न होने से मंदिर में नहीं जा सके। उनका अनुकूल उत्तर आवे, तो हमें भेज देना। प्रतिकूल उत्तर आवे, तो आपके पास रख लेना।

"हमारा मानना है कि उसको मनाही–इसको मनाही, ऐसा करने से हिंदु धर्म क्षीण हो जायेगा। भगवान् के दरवाजे सबके लिए खुले होने चाहिए।" फिर मैनेजर की ओर संकेत करते हुए विनोबा ने कहा कि "यह मैं आपके लिए कह रहा हूँ, राजा के लिए नहीं। राजा को हम देवता का मालिक नहीं मानते। मालिक तो हमारे सबके हृदय में बैठा हुआ है, राजा तो आज है। कल ऊपर चले जायेंगे, फिर भी आज उनका अधिकार माना जाता है, तो उनको आप पूछियेगा।"

मैनेजर ने कहा कि "आप रामायण-पाठ के लिए मंदिर आने वाले हैं, यह जान कर काफी लोग इकट्ठे हुए हैं। उन्हें आपके नहीं आने से दुःख होगा।" विनोबा ने कहा, "उन्हें हमारे प्रणाम कहियेगा और कहना कि रामायण-पाठ बाबा के पास होने ही वाला है। बाबा आठ मील चल कर आया है, वे भी डेढ़ मील आ सकते हैं।"

किसीने कहा कि "हरिजनों के लिए जैसा आन्दोलन हुआ, वैसा इसके लिए भी आंदोलन करना होगा।" विनोबा ने कहा, "हम वैसा आंदोलन नहीं करेंगे। मंदिर के दरवाजे सबके लिए खुले हों, यही समझायेंगे। क्रिस्तियों के चर्च में, मुसलमानों की मसजिद में और बौद्धों के विहार में ऐसी बंदी नहीं होती है। इतिहास में यह रिकॉर्ड रहेगा कि बाबा मंदिर में जाना चाहता था, पर नहीं जा सका।" मैनेजर ने कहा कि "आप इस बार आवें, तो आगे हम प्रयत्न करेंगे।" विनोबा ने कहा कि "मैं नहीं आ रहा हूँ, इससे आपको ज्यादा खुशी होनी चाहिये, क्योंकि एक शख्स अपने विचार पर दृढ़ रहा।" मैनेजर ने आखिर उठते हुए प्रश्नांकित मुद्रा से बाबा की ओर देखा, तो विनोबा ने कहा, "नहीं आ रहा हूँ, इसलिए "क्षम्यताम्!"

भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण

श्री तुकड़ोजी महाराज की ग्रामदान-यात्रा

—२६ जुलाई से १ अगस्त तक यवतमाल जिले (विदर्भ) में श्री तुकड़ोजी महाराज की ग्रामदान-यात्रा हुई, उसकी रिपोर्ट यह है : यह यात्रा बहुत सफल रही। ११ ग्रामदान मिले। समारोह के दिन ५०० गाँवों के १०००० लोग जुलूस के लिए यवतमाल आये थे। सारे जिले में जन-जागृति होकर एक जोशीला वातावरण तैयार हुआ, क्योंकि सब तहसीलों में महाराजजी ने भ्रमण किया। विशेषता यह थी कि जनता और महाराज, दोनों मदान में हैं, पानी आ रहा है, कार्यक्रम फिर भी जारी है! कहीं-कहीं नदी की बाढ़ भी पार करनी पड़ी। कीचड़ में पैदल यात्रा हुई, कहीं-मोटर द्वारा। अधिकतर तो पदयात्रा ही थी। (पत्र से)

श्री जयप्रकाशजी की गया-नगर-पदयात्रा

—श्री जयप्रकाशजी की नगर-पदयात्रा ता० १९ अगस्त से शुरू हुई। नगर को आठ क्षेत्रों में बाँटा गया। भिन्न-भिन्न मुहल्लों में जाकर विचार-प्रचार करके साहित्य बेचा गया है। मार्ग में कई दूकानों पर रुक कर श्री जयप्रकाशजी लोगों से व्यक्तिगत संपर्क साधते रहे। गया जिला छात्र-सम्मेलन में और आम सभाओं में श्री जयप्रकाशजी के भाषण भी हुए। दो मुस्लिम मुहल्लों में भी सभाएँ हुईं। विचार-शिविर में उन्होंने 'समाज-शास्त्र के क्रमिक विकास' का विवेचन किया। लोगों का उत्साह बहुत बढ़ा एवं वे काम के लिए तैयार हुए। फिर वही १९५३-५४ वाला वातारण बन गया। ता० २१ को श्री जयप्रकाश बाबू के, १४ सभाओं में, ता० २२ को ८ सभाओं में और ता० २३ को १२ सभाओं में प्रवचन हुए। इन तीन दिनों में उन्हें तीन थैलियाँ भेंट में मिली।

—आंध्र के राज्यपाल श्री भीमसेन सच्चर ने अपनी आमदनी का दसवाँ भाग संपत्तिदान में देते रहने का जाहिर किया।

—६ और ७ सितंबर को टिलक राष्ट्रीय शाला, अकोला में आचार्य दादा धर्माधिकारीजी और प्रो० बंग के नेतृत्व में अकोला जिला सर्वोदय-कार्यकर्ताओं का शिविर होगा।

—गांधी तत्त्व प्रचार-विभाग की गांधी-विचार-गोष्ठी के तत्त्वावधान में कानपुर नगर में १०-११ अगस्त को सर्वोदय-विचार-शिविर का आयोजन किया गया। पू० दादा धर्माधिकारीजी ने अपने पाँच व्याख्यानों द्वारा सर्वोदय के समग्र जीवन-दर्शन की विवेचना की। कानपुर के दो सौ से अधिक नागरिकों ने, जिनमें अधिकांश प्राध्यापक, साहित्यिक और जनसेवी थे, इस विचार-शिविर में भाग लिया।

—वीरभूम जिले के जाजिग्राम गाँव के २५ परिवारों ने भूदान, १५ परिवारों ने संपत्तिदान और ११० परिवारों ने श्रमदान दिया है। गाँव में हर माह ३०ता० को सर्वोदय-दिवस प्रभात फेरी, सफाई, सूत्रयज्ञ द्वारा मनाया जाता है। ६० किसान-चरखे चलते हैं। १० भाइयों को अंबर चरखे द्वारा शिक्षा दी जा रही है। ग्राम-स्वावलम्बन का प्रयत्न चालू है।

—जबलपुर (म० प्र०) में महाकोशल क्षेत्र के सर्वोदयी कार्यकर्ताओं की दो दिवसीय विचार-गोष्ठी हुई। निश्चय किया गया कि ११ सितम्बर से ३१ दिसम्बर तक समूचे महाकोशल क्षेत्र के जिलों में ग्रामदान, भूदान एवं भूक्रांति विषयक साहित्य का वितरण आदि कार्यक्रम अखण्ड रूप से आरंभ हो जावेगा। इस हेतु एक समिति का भी गठन किया गया, जिसके संयोजक श्री गणेश प्रसादजी नायक मनोनीत हुए।

—सघन क्षेत्र, सनवाड़ (राजस्थान) में ११ अगस्त को श्री धीरेन्द्र भाई आये। इस सघन क्षेत्र में करीब ३० गाँव हैं। कई परिवारों ने ग्रामोद्योगी वस्तुओं को प्रधानता देने का दृढ़ निश्चय किया है। दोपहर को कार्यकर्ता-सम्मेलन हुआ। श्री धीरेन्द्र भाई ने प्रेरणात्मक संदेश देते हुए कहा, "ग्रामराज के आधार पर ही हम संपूर्ण सुख की कल्पना कर सकेंगे। ग्रामदान का मतलब है, ग्रामवालों का एक कुटुंब हो, वही गाँव की रक्षा, विकास एवं प्रगति के बारे में तय करे तथा सामूहिक रूप से सभी कार्यक्रम चलें।"

—कालडी-संमेलन से निकले हुए पदयात्री-दल ने ७२५ मील की पदयात्रा पूरी करके धारवाड़ जिले में प्रवेश किया। चित्रदुर्ग जिले की सभाओं में करीब ७५० व्यक्तियों ने संपत्तिदान का संकल्प किया।

---

www.vinoba.in

—वर्धा तहसील में ४० गाँवों का एक सघन क्षेत्र चुना गया है, जिसमें १७ अगस्त से वर्धा जिले के कार्यकर्ता ग्रामदान-मुहिम पर निकल पड़े हैं।

सूचनाएँ :

निवेदक-शिविर-संबंधी सूचना

यह सूचित किया गया था कि ता० २५ सितम्बर से २७ सितम्बर तक मैसूर के आसपास निवेदकों का एक शिविर पू० विनोबाजी की उपस्थित में होगा। शिविर की पूर्व-तैयारी तथा उसका संयोजन श्री नारायण देसाई तथा श्री विमला बहन ठकार ने करना स्वीकार किया है। शिविर केवल निवेदकों तथा कुछ निमंत्रितों के लिए मर्यादित रहेगा। शिविर के निश्चित स्थान की सूचना भी उस समय दी जा सकेगी।

ता० २१-२२ सितम्बर को मैसूर में ग्रामदान के सिलसिले में एक कॉन्फरन्स भी हो रही है। उस कॉन्फरन्स के लिए निमंत्रितों के अलावा और कोई शामिल नहीं हो सकेंगे। कॉन्फरन्स अन्य लोगों के लिए खुली नहीं रहेगी। स्थानीय लोग तथा दफ्तर आदि के हम लोग भी उस कॉन्फरन्स के काम में व्यस्त होंगे, अतः निमंत्रित निवेदक ता०२४ सितम्बर की शाम से पहले शिविर-स्थान पर पहुँचने का कष्ट न करें।

अ. भा. सर्व-सेवा-संघ, खादीग्राम (मुँगेर) —सिद्धराज ढड्ढा, सहमंत्री

विनोबाजी की मैसूर प्रदेश की पदयात्रा का कार्यक्रम

जिला मंगलोर

ता.	स्थान	डाक-तार	ता.	स्थान	डाक-तार
३०–८	पुत्तुर	पुत्तुर	२–९	सुळया	सुळया
३१–८	कुंब्रा	—	३–९	अरन्तोडु	—
१–९	जालसूर	—	४–९	संपाजे	संपाजे
५–९	कूर्ग में प्रवेश				

विनोबाजी और श्री वल्लभस्वामी का पता : मार्फत-सर्व-सेवा-संघ, चामराजपेट, बंगलोर।

श्री बाबा राघवदासजी का कार्यक्रम

सितंबर ता.	सु० पड़ाव	रात्रि पड़ाव	सि० ता०	सु० पड़ाव	रात्रि पड़ाव
२	हुल्लपुर	इकलौद	६	काठौन	दौरद
३	बेनीपुरा	विजयपुर	७	सुनवई	बागरौद
४	दाउदपुर	गांवढ़ी	८	गढ़ी	शाहपुरकलां
५	गोटा पडे वपर	सिंगारदे	९		दोपहर को मुरेना

ता० १०–११ लश्कर-ग्वालियर में विविध कार्यक्रम

ता० १ से १० सितंबर तक का पता : मार्फत-काँग्रेस-दफ्तर, मुरेना (म.प्र.)

श्री शंकररावजी देव का कार्यक्रम

ता० २९ से ३१ अगस्त, आन्ध्र प्रदेश, पता : मार्फत-श्री प्रभाकरजी, गांधी-भवन, हैदराबाद द०। ता० १ से १५ सितम्बर, उरळी : मार्फत–निसर्गोपचार आश्रम, उरळीकांचन (पूना)। १६ से ३० सितम्बर, मैसूर; निवेदक-शिविर और ग्रामदान-परिषद। १ से ९ अक्टूबर, उरळीकांचन (पूना)। १० अक्टूबर से २० नवम्बर तक, राजस्थान, पता–मार्फत-राजस्थान समग्र सेवा संघ, किशोर निवास, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर सिटी।

प्रकाशन-समाचार

पुनर्मुद्रित पुस्तकें :

(१) ज्ञानदेव चिन्तनिका : (द्वितीय संस्करण), लेखक : विनोबा,
हिन्दी में अनुवाद : श्री दामोदरदास मूँदड़ा
प्रथम संस्करण की अपेक्षा इस नवीन संस्करण में १४८ के बजाय १७६ पृष्ठ हैं। मूल्य १)

(२) सुन्दरपुर की पाठशाला का पहला घंटा : (द्वितीय संस्करण)
लेखक : जुगतराम दवे; हिन्दी में अनुवाद–श्री काशीनाथ त्रिवेदी, मूल्य ।।।)

——अ० भा० सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी

केरल की विदाई-वेला में शांति-सेना की स्थापना

मंगलोर, २५ अगस्त : जिस समय सर्वोदय-मंडल के श्री केलप्पन्‌जी और उनके साथियों ने अपने को शांतिसेना में संघटित कर शान्ति-सेना के उद्देश्यों के लिए अपने प्राण तक निछावर कर देने की प्रतिज्ञा की, उस क्षण मानों स्वर्ग से आशीर्वाद के रूप में फुहार पड़ने लगी।

केरल-यात्रा का यह अन्तिम दिन था। वह सन्ध्या विनोबाजी की विदाई के उस संदेश के लिए, जो सर्वोदय-समाज अर्थात् शोषण और राज्य-नियन्त्रण से मुक्त समाज की स्थापना के भारी उत्तरदायित्व का प्रेरक था, उपयुक्त अवसर और अत्यधिक प्रेरणादायक स्वरूप लेकर उपस्थित हुई।

प्रतिज्ञा-समारोह अत्यन्त मर्मस्पर्शी और प्रभावोपादक था। अपने भावुकतापूर्ण संक्षिप्त भाषण के पश्चात् श्री केलप्पन्‌जी ने शांति-सेना-स्थापना-संबंधी वक्तव्य पढ़ा तथा सर्वोदय-मंडल के ६ सदस्यों ने बारी-बारी से विनोबाजी के समक्ष प्रतिज्ञा पढ़ी। उन्होंने तुलसीपत्र देकर आशीर्वाद दिया। महादेवी ताई ने इन शांति-सैनिकों के मस्तक पर कुंकुम् लगाया। शांति-सेना के सदस्यों के नाम ये हैं : श्री एकंडा वारियर,कोचीन के भूतपूर्व मुख्य मंत्री;गांधी-निधि के श्री जनार्दन पिल्लइ, केरल में विनोबाजी की प्रतिनिधि राजम्मा बेन तथा माही के ख्याति-प्राप्त श्री आई.के. कुमारन्। दो और कार्यकर्ता : प्रोफेसर दामोदरन् नायर तथा श्री गोविन्दन्‌जी ने भी प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर किये। ज्यों ही श्री विनोबाजी का आशीर्वादात्मक भाषण प्रारम्भ हुआ, त्यों ही अचानक मानो स्वर्ग से दैवी संस्पर्शयुक्त आशीर्वाद के रूप में वर्षा की झड़ी लग गयी। इस प्रकार महात्माजी का शांति-सेना-स्थापना का चिर-संचित स्वप्न सत्य हुआ। आज के क्षण राष्ट्रपिता की उपस्थिति का अभाव कितना खटक रहा था! जिस समय विनोबाजी ने गांधीजी के अभाव की इस अनुभूति का, जिसे उन्होंने भी महसूस किया, उल्लेख किया, उस समय वे द्रवित हो उठे।

कोळीकोड़ जिले की दो तहसीलें क्विलांडी और बाड़ागारा में, जहाँ ग्रामदान की संख्या ८० तक पहुँच चुकी है, शांति-सेना और ग्रामराज का प्रयोग होने जा रहा है।

केरल की प्राप्ति :

भूदान-दाता	२२४	संपत्तिदान-दाता	१३३७
भूमिदान	१५७१ एकड़	वार्षिक धनराशि	५१४०५)
ग्रामदान	३०१	साहित्य-बिक्री	१५३८९
	सूत्रदान ५४०० गुंडियाँ		

(तार से, ता० २५।८)

—विनोबा की मैसूर-यात्रा में खादी-ग्रामोद्योग की चीजों का प्रदर्शन करने के लिए एक खास गाड़ी रखने का खादी-ग्रामोद्योग-बोर्ड ने तय किया है। साहित्य-बिक्री की भी व्यवस्था है।

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	पख़्तून भी भूदान में पीछे नहीं रह सकेंगे!	खान अब्दुल गफ्फार खाँ	१
२.	आज की प्रमुख समस्या : "मैनेजरवाद!"	धीरेन्द्र मजूमदार	२
३.	केरल की बुनियादी समस्या और उसका हल	विनोबा	२
४.	क्रांति की साधना का अभिनव प्रयोग : ग्रामदान	अच्युत पटवर्धन	३
५.	अहिंसक क्रांति की परंपरा में भू'दान' 'यज्ञ'	विनोबा	४
६.	गढ़रियों की कहानी : विनोबा की ज़बानी!	,,	५
७.	पंद्रह अगस्त का नया क़दम	,,	६
८.	सर्वोदय की दृष्टि :		
	१. साधन-शुद्धि का मतलब	दादा धर्माधिकारी	६
	२. सार्वजनिक प्रार्थना की मर्यादा	,,	६
९.	नवसमाज के निर्माण में ग्रामदान-रूपी लोहचुंबक!	एस. एम. जोशी	७
१०.	पंचामृत	—	८
११.	पटना जिले का जून-जुलाई का विवरण	विद्यासागर	१०
१२.	केरल की क्रांतियात्रा से—	महादेवी	११
१३.	भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण	—	११
१४.	केरल की विदाई-वेला में शांति-सेना-स्थापना	—	१२

सिद्धराज ढड्ढा, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव-भूषण-प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता : राजघाट, काशी; टे० नं० १२८५।

www.vinoba.in